स्वनिम

सृजन और शोध की संदर्भित एवं पूर्व-समीक्षित त्रैमासिक पत्रिका

हिन्दी विभाग, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर

मैंने उसको जब-जब देखा

लोहा देखा

लोहे जैसा तपते देखा

गलते देखा

ढलते देखा

मैंने उसको

गोली जैसा चलते देखा

केदार नाथ अग्रवाल

स्वनिम

सृजन और शोध की संदर्भित एवं पूर्व-समीक्षित त्रैमासिक पत्रिका

वर्ष : 2-3 अंक : 5-6-7 जुलाई, 2023 - मार्च, 2024

संरक्षक

प्रो. आलोक कुमार चक्रवाल
कुलपति, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर

संपादक

डॉ. गौरी त्रिपाठी
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर

संपादक मण्डल

प्रो. मनीष श्रीवास्तव
प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग

प्रो. अनुराग चौहान
प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग

डॉ. रमेश कुमार गोहे
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

डॉ. मुरली मनोहर सिंह
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

डॉ. अनीश कुमार
सहायक प्रोफेसर (तदर्थ), हिन्दी विभाग

परामर्श मण्डल

प्रो. ब्रजेश तिवारी, डॉ. धीरज शुक्ला

स्वनिम

वर्ष : 2-3 अंक : 5-6-7 जुलाई, 2023- मार्च, 2024 संयुक्तांक
सृजन और शोध की संदर्भित एवं पूर्व-समीक्षित त्रैमासिक पत्रिका

Refereed and Peer-Reviewed Magazine

© सर्वाधिकार सुरक्षित

वैधानिक चेतावनी - स्वनिम में प्रकाशित रचनाओं के साथ हिन्दी विभाग, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर या संपादकों की सहमति होना आवश्यक नहीं है। समस्त कानूनी विवादों का न्यायक्षेत्र बिलासपुर, छत्तीसगढ़ होगा। सभी रेखाचित्र इन्टरनेट से साभार लिए गए हैं। प्रकाशित रचनाओं का समस्त उत्तरदायित्व रचनाकार का होगा।

संपादन : अवैतनिक

आवरण : ठठेरी बाजार गली वाराणसी स्थित भारतेंदु का घर

आवरण और विशेष सहयोग : डॉ. अखिलेश गुप्ता

साज-सज्जा : हीरामणी देवांगन, पार्थ ग्राफ़िक्स बिलासपुर

प्रकाशक व संपादकीय

डॉ. गौरी त्रिपाठी

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

गुरु घासीदास विश्वविद्यालय (केंद्रीय विश्वविद्यालय) कोनी, बिलासपुर (छ. ग.), पिनकोड - 495009

वेबसाइट - www.ggu.ac.in

ई-मेल - gauri.tripathi@ggu.ac.in

swanimhindiggv@gmail.com

अनुक्रम

संपादकीय

समय की शिला पर..... : डॉ. गौरी त्रिपाठी

धरोहर

मिस पाल : मोहन राकेश

पाठ-पुनर्पाठ

मिसपाल : कामकाजी महिलाओं का अकेलापन : डॉ. गौरी त्रिपाठी

विशेष प्रस्तुति

प्रो. आलोक कुमार चक्रवाल जी की सात कविताएं

कविताओं को पढ़ते हुए ....

बदलती वफाओं के दौर में : डॉ. गौरी त्रिपाठी

कविताएं

बसंत राघव, बसंत साव, प्रीति शर्मा 'असीम'

मनजीत सिंह, राकेश कुमार 'धनराज'

कहानी

दीपावली बम्फर गिफ्ट : श्यामल बिहारी महतो

धूप के रेशे मुलायम हैं : महेश कुमार केशरी

समय, समाज और संस्कृति

राम की शक्ति-पूजा : मिथक और आधुनिकता : प्रांजलि देवी

मूल्यांकन

सतपुड़ा की पगडंडियाँ : सहजीविता और संवेदनाओं की काव्यात्मक अभिव्यक्ति : डॉ. अनीश कुमार

विकास-क्रम

ब्राह्मी से देवनागरी : रमेश चन्द्र

भाषा की समृद्धि में कहानी की भूमिका : बसंत राघव

निबंध

सपने और सफलता : सीताराम गुप्ता

जिजीवियन

वक्त लगता है, बेटियां : सुष्मिता बारीक

चौखट पार करती स्त्री : सुसा राणा

संपादकीय

समय की शिला पर

19वीं सदी के मध्य तक भारतीय भाषाओं में आधुनिकता की अनुगूंज सुनाई देने लगी थी। हिंदी में भारतेंदु जी का विपुल साहित्य, उनके निबंध,नाटक,और कविताओं में आधुनिक चेतना की प्रतिच्छाया पड़ने लगी थी।हालांकि ज्यादातर कविताएं उन्होंने ब्रजभाषा में लिखी हैं, लेकिन उनका गद्य सीधे- सीधे अपने युग से संवाद था। कहा जाता है कि भारतेंदु युग हिंदी में आधुनिकता का प्रवेश द्वार है। बनारस चौक के बगल में एक अत्यंत संकरी ठठेरी बाजार की गली में आज भी भारतेंदु जी का घर है जहां यादगार स्वरूप वह डोली रखी हुई है जिसमें बैठकर वे कहीं आया- जाया करते थे।

साहित्यकारों का तीर्थ स्थल है वह घर।लोग दूर - दूर से उसे देखने आया करते हैं। इस बार स्वनिम के कवर पेज के लिए हमने भारतेंदु जी के घर का चित्र लिया है। बंगाल के पढ़े- लिखे लोग जिस तरह रवींद्र नाथ टैगोर को अपनी बांग्ला अस्मिता से जोड़कर देखते हैं, वह आत्मीयता और गौरव भाव हिंदी भाषियों में अपने भारतेंदु को लेकर नहीं दिखती है।

सेठ अमीचंद ,जिन्होंने कभी ईस्ट इंडिया कंपनी को कर्ज देकर दिवालिया होने से बचाया था, उन्हीं के प्रपौत्र गोपालचंद्र जी के बेटे थे भारतेंदु। संपन्नता का आलम यह था कि उनका घर वैसे तो साक्षात लक्ष्मी का मंदिर था,लेकिन वे ठहरे सरस्वती के वरद पुत्र।ईस्ट इंडिया कंपनी को कर्ज देने की बात पर भारतेंदु जी कहा करते थे कि इस धन ने हमारे पुरुखों को खाया है, मैं इस धन को खा जाऊंगा। उनके जीवन के हिस्से मात्र 35 वर्ष का अत्यल्प समय था, जिसका एक-एक क्षण उन्होंने साहित्य के लिए समर्पित कर दिया था।वे उन रचनाकारों में नहीं थे जो पुस्तकालयों और प्रकाशन संस्थाओं के भरोसे साहित्य सेवा कर रहे थे।साहित्य उनके सामाजिक सरोकार,और स्वतंत्रता संघर्ष का एक हिस्सा था।बलिया का प्रसिद्ध ददरी मेला,जिसका वर्णन फाह्यान तक ने किया है,वहां जाकर उन्होंने अपना नाटक "अंधेर नगरी" खेला था।

उन्होंने कई पत्रिकाओं का सम्पादन, संचालन किया। उनका घर साहित्यकारों का जमावड़ा स्थल बन गया था। भाषा को लेकर राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द से वे कई स्तरों पर टकराये और हिंदी, हिन्दू, हिंदुस्तान का उद्घोष किया। कहा जाता है कि 'सितारेहिंद' के विरोध में ही लोगो ने उनको 'भारतेंदु' कहना शुरू किया था।

“भारत वर्षोन्नति कैसे हो” किसी खास अवसर पर दिया गया उनका व्याख्यान है, जो बाद में निबंध के रूप में प्रकाशित और काफी चर्चित हुआ। हिंदी साहित्य में आधुनिकता का अर्थ ही था गद्य विधा के माध्यम से यथार्थवाद की प्रतिष्ठा।उन्होंने अपने निबंधों और नाटकों के माध्यम से जिस यथार्थवाद की बुनियाद डाली उसी का विकास प्रेमचंद की कहानियों और उपन्यासों में चरम पर दिखाई देता है।

हम कृतज्ञ हैं कि हमारे यशस्वी कुलपति,जो स्वयं एक संवेदनशील कवि हैं,उन्होंने हिंदी विभाग के लिए एक अलग "भारतेंदु भवन" की अपनी परिकल्पना को साकार किया है। आज लगभग डेढ़ -पौने दो सौ साल बाद जब हम 21 वीं सदी में प्रवेश कर चुके हैं तब आधुनिक युग के बादआज के समय को उत्तर आधुनिक कहा जाने लगा है। तकनीक ने हमारे युग ,व्यक्ति और समय को अपनी मजबूत गिरफ्त में ले लिया है।ऐसा प्रतीत होता है कि अब वह साधन मात्र न होकर साध्य हो चुकी है।

हमारे बचपन की स्मृतियां दादी की कहानियों जैसी लगती हैं। हम दिन- रात अपने मोबाइल के सहारे दुनिया के संपर्क में बने रहते है। लेकिन दुनिया तो छोड़ दीजिए मां बाप,भाई बहन जैसे आत्मीय रिश्तों में भी संवेदना विलुप्त सी होती जा रही है।सब कुछ बस एक सूचना है। हमारे जीवन से पुरानी चिट्ठियों की गंध खत्म हो गयी है। घर के एक कमरे में सब अपने अपने मोबाइल पर व्यस्त हैं।आपसी बातचीत में सिर्फ हां....हूँ....जैसे कुछ शब्द रह गए है। ऐसे में कागज पर लिखे शब्दों का क्या भविष्य है?

बाल्मीकि और भवभूति से चली आ रही कबीर और तुलसी की परंपरा का क्या होगा? क्या तकनीक ने हमसे हमारी कल्पना और हमारा अतीत छीन लिया है। क्या हम पूरी तरह यथार्थजीवी होकर रह जाएंगे। यह आदर्शों के खोते जाने का युग है। सभी कहते-प्रेक्टिकल बनिये।

ऐसे में साहित्य की ही भूमिका बच रहती है।हम साहित्य इस लिए नहीं रचते या पढ़ते कि समाज में मनुष्यता बची रहेगी, अगर ऐसा हो तो बहुत अच्छा,नहीं तो इतना तो जरूर होगा कि हमारी सृजन धर्मिता हमारे भीतर के मनुष्य को जरूर बचाये रखेगी। आपके हाथों में जा रहा यह "स्वनिम" का संयुक्तांक है। पाठक अपनी प्रतिक्रिया चिट्ठियों के माध्यम से भेजें तो हम उन्हें प्रकाशित करेंगे।

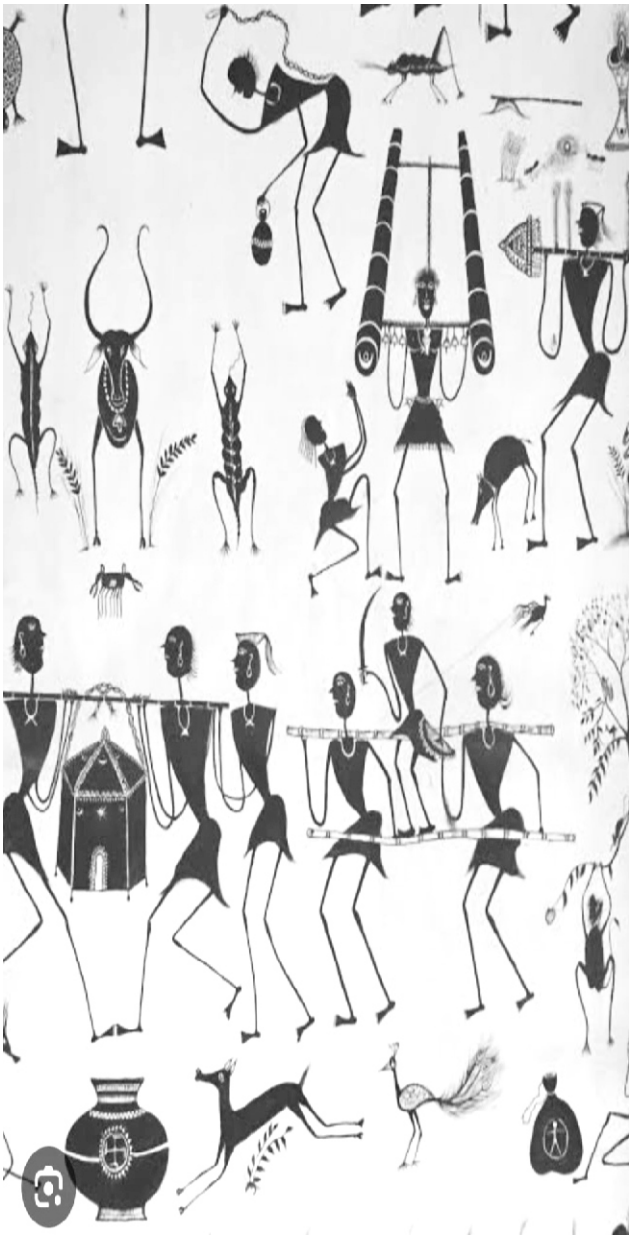

मिस पाल

मोहन राकेश

वह दूर से दिखाई देती आकृति मिस पाल ही हो सकती थी। फिर भी विश्वास करने के लिए मैंने अपना चश्मा ठीक किया। निःसन्देह, वह मिस पाल ही थी। यह तो खैर मुझे पता था कि वह उन दिनों कुल्लू में ही कहीं रहती है, पर इस तरह अचानक उससे भेंट हो जाएगी, यह नहीं सोचा था। और उसे सामने देखकर भी मुझे विश्वास नहीं हुआ कि वह स्थायी रूप से कुल्लू और मनाली के बीच उस छोटे- से गांव में रहती होगी। जब वह दिल्ली से नौकरी छोड़कर आई थी, तो लोगों ने उसके बारे में क्या-क्या नहीं सोचा था !

बस रायसन के डाकखाने के पास पहुंचकर रुक गई। मिस पाल डाकखाने के बाहर खड़ी पोस्टमास्टर से कुछ बात कर रही थी। हाथ में वह एक थैला लिए थी। बस के रुकने पर न जाने किस बात त के लिए पोस्टमास्टर को धन्यवाद देती हुई वह बस की तरफ मुड़ी। तभी मैं उतरकर उसके सामने पहुंच गया। एक आदमी के अचानक सामने आ जाने से मिस पाल थोड़ा अचकचा गई, मगर मुझे पहचानते ही उसका चेहरा खुशी और उत्साह से खिल गया।

"रणजीत तुम ?" उसने कहा, "तुम यहां कहां से टपक पड़े ?" "मैं इस बस से मनाली से आ रहा हूं।" मैंने कहा।

"अच्छा ! मनाली तुम कब से आए हुए थे ?"

"आठ-दस दिन हुए, आया था। आज वापस जा रहा हूं।"

"आज ही जा रहे हो?" मिस पाल के चेहरे से आधा उत्साह गायब हो गया, "देखो, कितनी बुरी बात है कि आठ-दस दिन से तुम यहां हो और मुझसे मिलने की तुमने कोशिश भी नहीं की। तुम्हें यह तो पता ही था कि मैं आजकल कुल्लू में हूं।" "हां, यह तो पता था, पर यह नहीं पता था कि कुल्लू के किस हिस्से में हो। अब भी तुम अचानक ही दिखाई दे गईं, नहीं मुझे कहां से पता चलता कि तुम इस जंगल को आबाद कर रही हो ?"

"सचमुच बहुत बुरी बात है," मिस पाल उलाहने के स्वर में बोली, "तुम इतने दिनों से यहां हो और और मुझसे तुम्हारी भेंट हुई आज जाने के वक्त।"

ड्राइवर जोर-जोर से हॉर्न बजाने लगा। मिस पाल ने कुछ चिढ़कर ड्राइवर की तरफ देखा और एकसाथ झिड़कने औरक्षमा मांगने के स्वर में कहा, "बस जी एक मिनट। मैं भी इसी बस से कुल्लू चल रही हूं। मुझे कुल्लू की एक सीट दे दीजिए। थैंक यू। थैंक यू वेरी मच !" और फिर मेरी तरफ मुड़कर बोली, "तुम इस बस से कहां तक जा रहे हो?"

"आज तो इस बस से जोगिन्दरनगर जाऊंगा। वहां एक दिन रहकर कल सुबह आगे की बस पकड़ गा।"

ड्राइवर अब और जोर से हॉर्न बजाने लगा। मिस पाल ने एक बार क्रोध और

बेबसी के साथ उसकी तरफ देखाऔर बस के दरवाजे की तरफ बढ़ती हुई बोली, "अच्छा, कुल्लू तक तो हम लोगों का साथ है ही, और बात कुल्लू पहुंचकर करेंगे। मैं तो कहती हूं कि तुम दो-चार दिन यहीं रुको, फिर चले जाना।"

बस में पहले ही बहुत भीड़ थी। दो-तीन आदमी वहां से और चढ़ गए थे, जिससे अन्दर खड़े होने की जगह भी नहीं रही थी। मिस पाल दरवाजे से अन्दर जाने लगी तो कण्डक्टर ने हाय बढ़ाकर उसे रोक दिया। मैंने कण्डक्टर से बहुतेरा कहा कि अन्दर मेरे बाली जगह खाली है, मिस साहब वहां बैठ जाएंगी और मैं भीड़ में किसी तरह खड़ा होकर चला जाऊंगा, मगर कण्डक्टर एक बार जिद पर अड़ा तो अड़ा ही रहा कि और सवारी वह नहीं ले सकता। मैं अभी उससे बात कर ही रहा था कि ड्राइवर ने बस स्टार्ट कर दी। मेरा सामान बस में था, इसलिए मैं दौड़कर चलती बस में सवार हो गया। दरवाजे से अन्दर जाते हुए मैंने एक बार मुड़कर मिस पाल की तरफ देख लिया। वह इस तरह अचकचाई-सी खड़ी थी जैसे कोई उसके हाथ से उसका सामान छीनकर भाग गया हो और उसे समझ न आ रहा हो कि उसे अब क्या करना चाहिए।

बस हल्के-हल्के मोड़ काटती कुल्लू की तरफ बढ़ने लगी। मुझे अफसोस होने लगा कि मिस पाल को बस में जगह नहीं मिली तो मैंने ही क्यों न अपना सामान वहां उतरवा लिया। मेरा टिकट जोगिन्दरनगर का था, पर यह जरूरी नहीं था कि उस टिकट से जोगिन्दरनगर तक जाऊं ही। मगर मिस पाल से भेंट कुछ ऐसे आकस्मिक ढंग से हुई थी और निश्चय करने के लिए समय इतना कम था कि मैं यह बात उस समय सोच भी नहीं सका था। थोड़ा-सा भी समय और मिलता, तो मैं जरूर कुछ देर के लिए वहां उतर जाता। उतने समय में तो मैं मिस पाल से कुशल समाचार भी नहीं पूछ सका था, हालांकि मन में उसके सम्बन्ध में कितना कुछ जानने की उत्सुकता थी। उसके दिल्ली छोड़ने के बाद लोग उसके बारे में जाने क्या-क्या बातें करते रहे थे। किसीका ख्याल था कि उसने कुल्लू में एक रिटायर्ड अंग्रेज मेजर से शादी कर ली है और मेजर ने अपने सेब के बगीचे उसके नाम कर दिए हैं। किसीकी सूचना थी कि उसे वहां सरकार की तरफ से वजीफा मिल रहा है और वह करती बरती कुछ नहीं, वस घूमती और हवा खाती है। कुछ ऐसे लोग भी थे जिनका कहना था कि मिस पाल का दिमाग खराब हो गया है और सरकार उसे इलाज के लिए अमृतसर पागलखाने में भेज रही है। मिस पाल एक दिन अचानक अपनी लगी हुई पांच सौ की नौकरी छोड़कर चली आई थी, ससे लोगों में उसके बारे में तरह-तरह की कहानियां प्रचलित थीं। जिन दिनों मिस पाल ने त्यागपत्र दिया, मैं दिल्ली में नहीं था। लम्बी छुट्टी लेकर बाहर गया था। मगर मिम पाल के नौकरी छोड़ने का कारण मैं काफी हद तक जानता था। वह सूचना विभाग में हम लोगों के साथ काम करती थी और राजेन्द्रनगर में हमारे घर से दस-बारह घर छोड़कर रहती थी। दिल्ली में भी उसका जीवन काफी अकेला था, क्योंकि दफ्तर के ज्यादातर लोगों से उसका मनमुटाव था और बाहर के लोगों से वह मिलती बहुत कम थी। दफ्तर का वातावरण उसे अपने अनुकूल नहीं लगता था। वह वहां एक-एक दिन जैसे गिनकर काटती थी। उसे हर एक से शिकायत थी कि वह घटिया किस्म का आदमी है, जिसके साथ उसका उठना बैठना नहीं हो सकता।

"ये लोग इतने ओछे और बेईमान हैं." वह कहा करती, "इतनी छोटी और कमीनी बातें करते हैं कि मेरा इनके बीच काम करते हर वक्त दम घुटता रहता है। जाने क्यों ये लोग इतनी छोटी-छोटी बातों पर एक-दूसरे से लड़ते हैं और अपने छोटे-छोटे स्वार्थों के लिए एक-दूसरे को कुचलने की कोशिश करते रहते हैं!"

मगर उस बातावरण में उसके दुःखी रहने का मुख्य कारण दूसरा था, जिसे वह मुंह से स्वीकार नहीं करती थी। लोग इस बात को जानते निते थे, थे, इसलिए जान-बूझकर उसे छेड़ने के लिए कुछ-न-कुछ कहते रहते थे। बुखारिया तो रोज ही उसके रंग-रूप पर कोई न कोई टिप्पणी कर देता था।

'क्या बात है मिस पाल, आज रंग बहुत निखर रहा है!"

दूसरी तरफ से जोरावरसिंह बात जोड़ देता, "आजकल मिस पाल पहले से स्लिम भी तो हो रही हैं।"

मिस पाल इन संकेतों से बुरी तरह परेशान हो उठती और कई बार ऐसे मौके पर कमरे से उठकर चली जाती। उसकी पोशाक पर भी लोग तरह-तरह की टिप्पणियां करते रहते थे। वह शायद अपने मुटापे की क्षतिपूति के लिए ही वाल छोटे कटवाती थी, बगैर बांह की कमीजें पहनती थी और बनावसिंगार से चिढ़ होने पर भी रोज काफी समय मेक अप पर खर्च करती थी। मगर दफ्तर में दाखिल होते ही उसे किसी न किसीके मुंह से ऐसी बात सुनने को मिल जाती थी, "मिल पाल, इस नई कमीज का डिजाइन बहुत अच्छा है। आज तो गजब ढा रही हो तुम!"

मिस पाल को इस तरह की हर बात दिल में चुभ जाती थी। जितनी देर दफ्तर में रहती, उसका चेहरा गम्भीर बना रहता। जब पांच बजते, तो वह इस तरह अपनी मेज से उठती जैसे कई घंटे की सजा भोगने के बाद उसे छुट्टी मिली हो। दफ्तर से उठकर वह सीधी अपने घर चली जाती और अगले दिन सुबह दफ्तर के लिए निकलने तक वहीं रहती। शायद दफ्तर के लोगों से तंग आ जाने की वजह से ही वह और लोगों से भी मेल- जोल नहीं रखना चाहती थी। मेरा घर पास होने की वजह से, या शायद इसलिए कि दफ्तर के लोगों में एक मैं ही था जिसने उसे कभी शिकायत का मौका नहीं दिया था, वह कभी शाम को हमारे यहां चली

आती थी। मैं अपनी बुआ के पास रहता था और मिस पाल मेरी बूआ और उनकी लड़कियों से काफी घुल-मिल गई थी। कई बार घर के कामों में वह उनका हाथ भी बंटा देती थी। किसी दिन हम उसके यहां चले जाते थे। वह घर में समय बिताने के लिए संगीत और चित्रकला का अभ्यास करती थी। हम लोग पहुंचते तो उसके कमरे से सितार की आवाज आ रही होती या वह रंग और कूचियां लिए किसी तसवीर में उलझी होती। मगर जब वह इन दोनों में से कोई भी काम न कर रही होती तो अपने तख्त पर बिछे मुलायम गद्दे पर दो तवियों के बीच लेटी छत को ताक रही होती। उसके गद्दे पर जो झीना रेशमी कपड़ा बिछा रहता था, उसे देखकर मुझे बहुत चिढ़ होती थी। मन करता था कि उसे खींचकर बाहर फेंक दूं। उसके कमरे में सितार, तबला, रंग, कैनवस, तसवीरें, कपड़े तथा नहाने और चाय बनाने का सामान इस तरह उलझे-बिखरे रहते थे कि बैठने के लिए कुरसियों का उद्धार करना एक समस्या हो जाती थी। कभी मुझे उसके झीने रेशमी कपड़े वाले तख्त पर बैठना पड़ जाता तो मुझे मन में बहुत ही परेशानी होती। मन करता कि जितनी जल्दी हो वहां से उठ जाऊं। मिस पाल अपने कमरे के चारों तरफ खोजकर जाने कहां से एक चायदानी और तीन-चार टूटी प्यालियां निकाल लेती और हम लोगों को 'फर्स्ट क्लास वोहीमियन कॉफी' पिलाने की तैयारी करने लगती। कभी वह हम लोगों को अपनी बनाई तसवीरें दिखाती और हम तीनों मैं और मेरी दोनों बहनें अपना अज्ञान छिपाने के लिए उनकी प्रशंसा कर देते। मगर कई बार वह हमें बहुत उदास मिलती और ठीक ढंग से बात भी न करती। मेरी बहनें ऐसे मौके पर उससे चिढ़ जातीं और कहतीं कि वे उसके यहां फिर नहीं जाएंगी। मगर मुझे ऐसे अवसर पर मिस पाल से ज्यादा सहानुभूति होती।

आखिरी बार जब मैं मिस पाल के यहां गया, मैंने उसे बहुत ही उदास देखा था। मेरा उन दिनों एपेंडेसाइटिस का आपरेशन हुआ था और मैं कई दिन अस्पताल में रहकर आया था। मिस पाल उन दिनों रोज अस्पताल में खबर पूछने आती रही थी। वूआ अस्पताल में मेरे पास रहती थी पर खाने-पीने का सामान इकट्ठा करना उनके लिए मुश्किल था। मिस पाल सुबह-सुबह आकर सब्जियां और दूध दे जाती थी। जिस दिन मैं उसके यहां गया, उससे एक ही दिन पहले मुझे अस्पताल से छट्टी मिली। थी और मैं अभी काफी कमजोर था। फिर भी उसने मेरे लिए जो तकलीफ उठाई थी, उसके लिए मैं उसे धन्यवाद देना चाहता था।

मिस पाल ने दफ्तर से छुट्टी ले रखी थी और कमरा बन्द किए अपने गद्दे पर लेटी थी। मुझे पता लगा कि शायद वह सुबह से नहाई भी नहीं है।

"क्या बात है, मिस पाल? तबियत तो ठीक है?" मैंने पूछा।

"तबीयत ठीक है", उसने कहा, "मगर मैं नौकरी छोड़ने की सोच रही हूं।"

"क्यों? कोई खास बात हुई है क्या?"

"नहीं, खास बात क्या होगी? बात बस इतनी ही है मैं ऐसे लोगों के बीच काम कर ही नहीं सकती मैं सोच रही हूं कि दूर के किसी खूबसूरत-से पहाड़ी इलाके में चली जाऊं और वहां रहकर संगीत और चित्रकला का ठीक से अभ्यास करूं। मुझे लगता है, मैं खामखाह यहां अपनी जिन्दगी बरबाद कर रही हूं। मेरी समझ में नहीं आता कि इस तरह की ज़िन्दगी जीने का आखिर मतलब ही क्या है? सुबह उठती हूं, दफ्तर चली जाती हूं। वहां सात-आठ घंटे खराब करके घर आती हूं, खाना खाती हूं और सो जाती हूं। यह सारा का सारा सिलसिला मुझे बिलकुल बेमानी लगता है। मैं सोचती हूं कि मेरी जरूरतें ही कितनी हैं? मैं कहीं भी जाकर एक छोटा-सा कमरा या शैक लं तो थोड़ा-सा ज़रूरत का सामान अपने पास रखकर पचास-साठ या सौ रुपये में गुजारा कर सकती हूं। यहां मैं जो पांच सौ लेती हूं, वे पांच के पांच सौ हर महीने खर्च हो जाते हैं। किस तरह खर्च हो जाते हैं, यह खुद मेरी समझ में नहीं आता। पर अगर ज़िन्दगी इसी तरह चलती है, तो क्यों मैं खामखाह दफ्तर जाने-आने का भार ढोती रहूं? बाहर रहने में कम से कम अपनी स्वतन्त्रता तो होगी। मेरे पास कुछ रुप्ये पहले के हैं, कुछ मुझे प्राविडेंट फण्ड के मिल जाएंगे। इतने में एक छोटी सी जगह पर मेरा काफी दिन गुजारा हो सकता है। मैं ऐसी जगह रहना चाहती हूं जहां यहां की ही गन्दगी न हो और लोग इस तरह की छोटी हरकतें न करते हीं। ठीक से जीने के लिए इन्सान को कम से कम इतना तो महसूस होना चाहिए कि उसके आसपास का वातावरण उजला और साफ है, और वह एक मेंढक की तरह गंदले पानी में नहीं जी रहा।"

"मगर तुम यह कैसे कह सकती हो कि जहां भी तुम जाकर रहोगी, वहां हर चीज वैसी ही होगी जैसी तुम चाहती हो? मैं तो समझता हूं कि इन्सान जहां भी चला जाए, अच्छी और बुरी दोनों तरह की चीजें उसे अपने आसपास मिलेंगी ही। तुम यहां के वातावरण से घबराकर कहीं और जाती हो, तो यह कैसे कहा जा सकता है कि वहां वा वातावरण भी तुम्हें ऐसा ही नहीं लगेगा? इसलिए मेरे ख्याल से नौकरी छोड़ने की बात तुम गलत सोचती हो। तुम यहीं रहो और अपना संगीत और चित्रकला का अभ्यास करती रहो। लोग जैसी बातें करते हैं, करने दो।"

पर मिस पाल की वितृष्णा इससे कम नहीं हुई। "तुम नहीं समझते, रणजीत," वह बोली, "यहां ऐसे लोगों के बीच और रहूंगी, तो मेरा दिमाग बिलकुल खोखला हो जाएगा। तुम नहीं जानते कि मैं

जो तुम्हारे लिए सुबह दूध और सब्जियां लेकर जाती रही हूं, उसे लेकर भी ये लोग क्या-क्या वातें करते रहे हैं। जो लोग अच्छे-से-अच्छे काम का ऐसा कमीना मतलब लेते हों उनके बीच आदमी रह ही कैसे सकता है ? मैंने यह सब बहुत दिन सह लिया है, अब और मुझसे नहीं सहा जाता। मैं सोच रही हूं जितनी जल्दी हो सके यहां से चली जाऊं। बस यही एक बात तय नहीं कर पा रही कि जाऊं कहां। अकेली होने से किसी अनजान जगह जाकर रहते डर लगता है। तुम जानते ही हो कि मैं.. ।" और बात बीच में छोड़कर वह उठ खड़ी हुई, "अच्छा, तुम्हारे लिए कुछ चाय- वाय तो बनाऊं। तुम अभी अस्पताल से निकलकर आए हो और मैं हूं कि अपनी ही बात किए जा रही हूं। तुम्हें अभी कुछ दिन घर पर आराम करना चाहिए। अभी से इस तरह चलना-फिरना ठीक नहीं।"

"मैं चाय नहीं पिऊंगा," मैंने कहा, "मैं तुम्हें कुछ समझा तो नहीं सकता, सिर्फ इतना कह सकता हूं कि तुम लोगों की बातों को जरूरत से ज्यादा महत्त्व दे रही हो। मेरा यह भी ख्याल है कि लोग वास्तव में उतने बुरे नहीं हैं जितना कि तुम उन्हें समझती हो। अगर तुम इस नजर से सोचो कि।"

"इस बात को रहने दो," मिस पाल ने मेरी बात बीच में काट दी, "मैं इन लोगों से दिल से नफरत करती हूं। तुम इन्हें इन्सान समझते हो? मुझे तो ऐमे लोगों से अपना पिकी ज्यादा अच्छा लगता है। यह उन सबसे कहीं ज्यादा सभ्य है।"

पिकी मिस पाल का छोटा-सा कुत्ता था। वह कुछ देर उसे गोदी में लिए उसके बालों पर हाथ फेरती रही। मैंने पहले भी कई बार देखा था कि वह उस कुत्ते को एक बच्चे की तरह प्यार करती है और उसे खाना खिलाकर बच्चों की तरह ही तौलिये से उसका मुंह पोंछती है। मैं कुछ देर बाद वहां से उठकर चला, तो मिस पाल पिकी को गोदी में लिए मुझे बाहर दरवाजे तक छोड़ने आई।

"अंकल को टा टा करो," वह पिकी की एक अगली टांग हाथ से हिलाती हुई बोली, "टा टा, टा टा !"

मैं लम्बी छुट्टी से वापस आया, तो मिस पाल त्यागपत्र देकर जा चुकी थी। वह अपने बारे में लोगों को इतना ही बताकर गई थी कि वह कुल्लू के किसी गांव में बसने जा रही है। बाकी बातें लोगों की कल्पना ने अपने-आप जोड़ दी थी।

बस व्यास के साथ-साथ मोड़ काट रही थी और मेरा मन हो रहा था कि लौट- कर रायसन चला जाऊं। मैं मनाली में दस दिन अकेला रहकर ऊब गया था, और मिस पाल थी कि कई महीनों से वहां रहती थी। मैं जानना चाहता था कि वह अकेली वहां कैसा महसूस करती है और नौकरी छोड़ने के बाद से उसने क्या-क्या कुछ कर डाला है। यूं एक अपरिचित स्थान पर किसी पुराने परिचित से मिलने और बात करने का भी अपना आकर्षण होता है। बस जब कुल्लू पहुंचकर रुकी, तो मैंने अपना सामान वहां उतरवा कर हिमाचल राज्य परिवहन के दफ्तर में रखवा दिया और रायसन के लिए वापसी की पहली बस पकड़ ली। बस ने पन्द्रह-वीस मिनट में मुझे रायसन के बाजार में उतार दिया। मैंने वहां एक दुकानदार से पूछा कि मिस पाल कहां रहती हैं।

"मिस पाल कौन है, भाई ?" दुकानदार ने अपने पास बैठे युवक से पूछा। "वह तो नहीं, वह कटे बालों वाली मिस ?" "हां-हां, वही होगी।"

दुकान में और भी चार-पांच व्यक्ति थे। उन सबकी आंखें मेरी तरफ घूम गईं। मुझे लगा जैसे वे मन में यह तय करना चाह रहे हों कि कटे बालों वाली मिस के साथ मेरा क्या रिश्ता होगा।

"चलिए, मैं आपको उसके यहां छोड़ आता हूं," कहकर युवक दुकान से उतर आया। सड़क पर मेरे साथ चलते हुए उसने पूछा, "क्यों भाई साहब यह मिस क्या अकेली ही है या..?"

"हां अकेली ही है।"

कछ देर हम लोग चुप रहकर चलते रहे। फिर उसने पूछा, "आप उसके क्या लगते हैं ?"

मुझे समझ नहीं आया कि मैं उसको क्या उत्तर दूं। पल-भर सोचकर मैंने कहा, "मैं उसका रिश्तेदार नहीं हूं। उसे वैसे ही जानता हूं ।"

सड़क से बाईं तरफ थोड़ा ऊपर को जाकर हम लोग एक खुले मैदान में पहुंच गए। मैदान चारों तरफ से पेड़ों से घिरा था और बीच में पांच-छह जालीदार कॉटेज बने थे, जो बड़े-बड़े मुर्गी-खानों जैसे लगते थे। लड़का मुझे बताकर कि उनमें पहला कॉटेज मिस पाल का है, वहां से लौट गया। मैंने जाकर कॉटेज का दरवाजा खटखटाया।

"कौन है ?" अन्दर से मिस पाल की आवाज सुनाई दी।

"एक मेहमान है मिस, दरवाजा खोलो।"

"दरवाजा खुला है, आ जाइए।" मैंने दरवाजा धकेलकर खोल लिया और अन्दर चला गया। मिस पाल ने एक

चारपाई पर अपना गद्दा लगा रखा था और उसी तरह दो तकियों के बीच लेटी थी जैसे दिल्ली में अपने तख्त पर पर लेटी रहती थी। सिरहाने के पास एक खुली हुई पुस्तक रखी थी- बर्ट्रण्ड रसेल की 'कांक्वेस्ट ऑफ हेपीनेस' । मैं देखकर तय नहीं कर सका कि वह पुस्तक पढ़ रही थी या लेटी हुई सिर्फ छत की तरफ देख रही थी। मुझे देखते ही वह चौंककर बैठ गई।

"अरे तुम..?"

"हां, मैं। तुमने सोचा भी नहीं होगा कि गया आदमी फिर वापस भी आ सकता है।" गए !" "बहुत अजीब आदमी हो तुम ! वापस आना था, तो उसी समय क्यों नहीं उतर "बजाय इसके कि शुक्रिया अदा करो जो सात मील जाकर वापस चला आया हूं।"

"शुक्रिया अदा करती अगर तुम उसी समय उतर जाते और मुझे बस में अपनी सीट ले लेने देते।"

मैंने ठहाका लगाया और बैठने के लिए जगह ढूंढ़ने लगा। वहां भी चारों तरफ वही बिखराव और अव्यवस्था थी जो दिल्ली में उसके घर दिखाई दिया करती थी। हर चीज हर दूसरी चीज की जगह काम में लाई जा रही थी। एक कुरसी ऊपर से नीचे तक मले कपड़ों से लदी थी। दूसरी पर कुछ रंग बिखरे थे और एक प्लेट रखी थी जिसमें बहुत-सी कीलें पड़ी थीं।

"बैठो, मैं झट से तुम्हारे लिए चाय बनाती हूं," मिस पाल व्यस्त होकर उठने लगी।

"अभी मुझसे बैठने को तो कहा नहीं, और चाय की फिक्र पहले से करने लगीं ?" मैंने कहा, "मुझे बैठने की जगह बता दो और चाय-वाय रहने दो। इस वक्त तुम्हारी 'बोहीमियन चाय' पीने का जरा मन नहीं है।"

"तो मत पियो। मुझे कौन भंझट करना अच्छा लगता है! बैठने की जगह मैं अभी बनाए देती हूं।" और कपड़े-अपड़े हटाकर उसने एक कुरसी खाली कर दी। बाईं तरफ एक बड़ी-सी मेज थी, पर उस पर भी इतनी चीजें पड़ी थीं कि कहीं कुहनी रखने तक की जगह नहीं थी। मैंने बैठकर टांगें फैलाने की कोशिश की तो पता चला कपड़ों के ढेर के नीचे मिस पाल ने अपने बनाए खाके रख रखे हैं। मिस पाल फिर से अपने बिस्तर में तकियों के सहारे बैठ गई थी। गद्दे पर उसने वही झीना रेशमी कपड़ा बिछा रखा था, जिसे देखकर मुझे चिढ़ हुआ करती थी। मेरा उस समय भी मन हुआ कि उस कपड़े को निकालकर फाड़ दूं या कहीं आग में झोंक दं। मैंने सिगरेट सुलगाने के लिए मेज से दिया सलाई की डिबिया उठाई मगर खोलते ही वापस रख दी। डिबिया में दियासलाइयां नही थीं, गुलाबी-सा रंग भरा था। मैंने चारों तरफ नजर दौड़ाई, मगर और डिबिया कही दिखाई नहीं दी।

"दियासलाई किचन में होगी, मैं अभी लाती हूं," कहती हुई मिस पाल फिर उठी और कमरे से चली गई। मैं उतनी देर आसपास देखता रहा। मुझे फिर उस दिन की याद हो आई जिस दिन मैं मिस पाल के घर देर तक बैठा उससे बातें करता रहा था। पिकी से मिस पाल के 'टा टा' कराने की बात याद आने से मैं हंस दिया। तभी मिस पाल दियासलाई की डिबिया लिए आ गई। मेरा अकेले में हंसना शायद उसे बहुत अस्वाभाविक लगा। वह सहसा गम्भीर हो गई। "किसी ने कुछ पिला-विला दिया है क्या ? उसने मजाक और शिकायत के स्वर में कहा।

"मैं अपने इस तरह लौटकर आने की बात पर हंस रहा हूं।" और जैसे अपने को ही अपने झूठ का विश्वास दिलाने के लिए मैंने अपनी हंसी की नकल की ओर कहा, "मैं सोच भी नहीं सकता था कि इस अनजान जगह पर अचानक तुमसे भेंट हो जाएगी ? और तुम्हींने कहां सोचा होगा कि जो आदमी बस में आगे चला गया था, वह घण्टा-भर बाद तुम्हारे कमरे में बैठा तुमसे बात कर रहा होगा !"

और विश्वास करके कि मैंने अपने हंसने के कारण की व्याख्या कर दी है, मैंने पूछा, "तुम्हारा पिकी कहां है? यहां दिखाई नहीं दे रहा।"

मिस पाल पहले से भी गम्भीर हो गई। मुझे लगा कि उसका चेहरा अब काफी रूखा लगने लगा है। आंखों में लाली भर रही थी, जैसे कई रातों से वह ठीक से सोई न हो।

पिंकी को यहां आने के बाद एक रात सरदी लग गई थी," उसने अपनी उसांस दबाकर कहा, "मैंने उसे कितनी ही गरम चीजें खिलाई, पर वह दो दिन में चलता बना।" मैंने विषय बदल दिया। उससे शिकायत करने लगा कि वह जो अपने बारे में बिना किसी को ठीक बताए दिल्ली से चली आई, यह उसने ठीक नहीं किया। "दफ्तर में अब भी लोग मिस पाल की बात करके हंसते होंगे !" उसने ऐसे पूछा जैसे वह स्वयं उस मिस पाल से भिन्न हो, जिसके बारे में वह सवाल पूछ रही थी। पर उसकी आंखों में यह जानने की बहुत उत्सुकता भर रही थी कि मैं उसके सवाल का क्या जवाब देता हूं।

"लोगों की बातों को तुम इतना महत्त्व क्यों देती हो ?" मैंने कहा। "लोग वैसी बातें इसलिए करते हैं कि उनके जीवन में मनोरंजन के दूसरे साधन बहुत कम होते हैं। जब वह व्यक्ति चला जाता है, तो चार दिन में यह भूल जाते हैं कि संसार में उसका अस्तित्व था भी या नहीं।"

कहते-कहते मुझे एहसास हो आया कि मैंने यह कहकर गलती की है। मिस पाल मुझसे यही सुनना चाहती थी कि लोग अब भी उसके बारे में उसी तरह बात करते हैं और उसी तरह उसका मजाक उड़ाते हैं - यह विश्वास उसके लिए अपने वर्तमान को पार्थक समझने के लिए जरूरी था।

"हो सकता है तुम्हारे सामने बात न करते हों," मिस पाल बोली, "क्योंकि उन्हें पता है कि हम लोग अम्...अ... मित्र रहे हैं। नहीं

तो वे कमीने लोग बात करने हैं बाज आ सकते हैं ?"

अच्छा था कि मिस पाल ने मेरी बात पर विश्वास नहीं किया। उसने समझा कि मैं झूठमूठ उसे दिलासा देने की कोशिश कर रहा हूं। ""हो सकता है बात करते भी हों," मैंने कहा, "पर तुम अब उन लोगों की बात क्यों सोचनी हो ? कम-से-कम तुम्हारे लिए तो उन लोगों का अब अस्तित्व ही नहीं है।" "मेरे लिए उन लोगों का अस्तित्व कभी था ही नहीं," मिस पाल ने मुंह विचका दिया, "मैं उनमें से किसी को अपने पैर के अंगूठे के बराबर भी नहीं समझती थी।" आंखों से लग रहा था जैसे अब भी उन लोगों को अपने पास देख रही हो और उसे खेद हो कि वह ठीक से उनसे प्रतिशोध क्यों नहीं ले पा रही। "तुम्हें पता है कि रमेश का फिर लखनऊ ट्रांस कर हो गया है ?" मैंने बात बदल दी।

"अच्छा, मुझे पता नहीं था !"

पर उसने उस सम्बन्ध में और जानने की उत्सुकता प्रकट नहीं की। मैं फिर भी उसे रमेश के ट्रांसफर का किस्सा विस्तार से सुनाने लगा। मिस पाल 'हूं-हां' करती रही। पर यह साफ था कि वह अपने अन्दर ही कहीं खो गई है।

मैं रमेश की बात कह चुका, तो कुछ क्षण हम दोनों चुप रहे। फिर मिस पाल बोली, "देखो, मैं तुमसे सच कहती हूं रणजीत, मुझे वहां उन लोगों के बीच एक-एक पल काटना असम्भव लगता था। मुझे लगता था, मैं नरक में रहती हूं। तुम्हें पता ही है, मैं दफ्तर में किसी से बात करना भी पसन्द नहीं करती थी।"

मैं सुबह मनाली से बिना नाश्ता किए चला था, इसलिए मुझे भूख लग आई थी। मैंने बात को रोटी के प्रकरण पर ले आना उचित समझा। मैंने उससे पूछा कि उसने खाने की क्या व्यवस्था कर रखी है खुद बनाती है, या कोई नौकर रख रखा है।

"तुम्हें भूख तो नहीं लगी ?" मिस पाल अब दफ्तर के माहौल से बाहर निकल आई, "लगी हो, तो उधर मेरे साथ किचन में चलो। जो कुछ बना है, इस वक्त तो तुम्हें उसी में से थोड़ा-बहुत खा लेना होगा। शाम को मैं तुम्हें ठीक से बनाकर खिलाऊंगी। मुझे तुम्हारे आने का पता होता, तो मैं इस वक्त भी कुछ और चीज बना रखती। यहां बाजार में तो कुछ मिलता ही नहीं। किसी दिन अच्छी सब्जी मिल जाए, तो समझो बड़े भाग्य का दिन है। कोई दिन होता है जिस दिन एकाध अण्डा मिल जाता है। शाम को मैं तुम्हारे लिए मछली बनाऊंगी। यहां की ट्राउट बहुत अच्छी होती है। मगर मिलती बहुत मुश्किल से है।"

मुझे खुशी हुई कि मैंने सफलतापूर्वक बात का विषय बदल दिया है। मिस पाल बिस्तर से उठकर खड़ी हो गई थी। मैंने भी कुर्सी से उठते हुए कहा, "आओ, चलकर तुम्हारा रसोईघर तो देख लूं। इस समय मुझे कसकर भूख लगी है, इसलिए जो कुछ भी बना है वह मुझे ट्राउट से अच्छा लगेगा। शाम को मैं जोगिन्दरनगर पहुंच जाऊंगा।"

मिस पाल दरवाजे से बाहर निकलती हुई सहसा रुक गई।

"तुम्हें शाम को जोगिन्दरनगर ही पहुंचना है तो लौटकर क्यों आए थे ? यह बात तुम गांठ में बांध लो कि आज मैं तुम्हें यहां से नहीं जाने दूंगी। तुम्हें पता है इन तीन महीनों से तुम मेरे यहां पहले ही मेहमान आए हो ? मैं तुम्हें आज कैसे जाने दे सकती हूं?... तुम्हारे साथ कुछ सामान-आमान भी है या ऐसे ही चले आए थे ?" मैंने उसे बताया कि मैं अपना सामान हिमाचल राज्य परिवहन के दफ्तर में छोड़ आया हूं और उससे कह आया हूं कि दो घंटे में मैं लौट आऊंगा।

"मैं अभी पोस्टमास्टर से वहां टेलीफोन करा दूंगी। कल तक तुम्हारा सामान यहां ले आएंगे। तुम कम से कम एक सप्ताह यहां रहोगे। समझे ? मुझे पता होता कि हाल तुम मनाली में आए हुए हो तो मैं भी कुछ दिन के लिए वहां चली आती। आजकल तो मैं यहां "खैर तुम पहले उधर तो आओ, नहीं भूख के मारे ही यहां से भाग जाओगे।" मैं इस नई स्थिति के लिए तैयार नहीं था। उस सम्बन्ध में बाद में बात करने की सोचकर मैं उसके साथ रसोईघर में चला गया। रसोईघर में कमरे जितनी अराजकता नहीं थी, शायद इसलिए कि वहां सामान ही बहुत कम था। एक कपड़े की आराम कुर्सी थी, जो लगभग खाली ही थी उस पर सिर्फ नमक का एक डिब्बा रखा हुआ था। शायद मिस पाल उसपर बैठकर खाना बनाती थी। खाना बनाने का और सारा सामान एक टूटी हुई मेज पर रखा था। कुर्सी पर रखा हुआ डिब्बा उसने जल्दी से उठाकर मेज पर रख दिया और इस तरह मेरे बैठने के लिए जगह कर दी। फिर मिस पाल ने जल्दी-जल्दी स्टोव जलाया और सब्जी की पतीली उसपर रख दी। कलछी साफ नहीं थी, वह उसे साफ करने के लिए बाहर चली गई। लौटकर उसे कलछी को पोंछने के लिए कोई कपड़ा नहीं मिला। उसने अपनी कमीज से ही उसे पोंछ लिया और सब्जी को हिलाने लगी।

"दो आदमियों का खाना है भी या दोनों को ही भूखे रहना पड़ेगा ?" मैंने पूछा।

"खाना बहुत है," मिस पाल झुककर पतीली में देखती हुई बोली।

"क्या-क्या है ?"

मिस पाल कलछी से पतीली में टटोलकर देखने लगी।

"बहुत कुछ है। आलू भी हैं, बैंगन भी हैं और शायद शायद बीच में एकाध टींडा भी है। यह सब्जी मैंने परसों बनाई थी।"

"परसों ?" मैं ऐसे चौंक गया जैसे मेरा माथा सहसा किसी चीज से टकरा गया हो। मिस पाल कलछी चलाती रही।

"हर रोज तो नहीं बना पाती हूं," वह बोली। रोज बनाने लगूं तो बस खाना बनाने की ही हो रहूं। और अम् अ अपने अकेली के लिए रोज्ज बनाने का उत्साह भी तो नहीं होता। कई बार तो मैं सप्ताह-भर का खाना एक साथ बना लेती हूं और फिर निश्चिन्त होकर खाती रहती हूं। कहो तो तुम्हारे लिए मैं अभी ताजा बना दूं।"

"तो चपातियां भी क्या परसों की ही बना रखी हैं?" मैं अनायास कुर्सी से उठ खड़ा हुआ।

"आओ, इधर आकर देख लो, खा सकोगे या नहीं।" वह कोने में रखे हुए बेंत के सन्दूक के पास चली गई। मैं भी उसके पास पहुंच गया। मिस पाल ने सन्दूक का ढकना उठा दिया। सन्दूक में पच्चीस-तीस खुश्क चपातियां पड़ी थीं। सूखकर उन सबने कई तरह की आकृतियां धारण कर ली थीं। मैं सन्दूक के पास से आकर फिर कुर्सी पर बैठ गया।

"तुम्हारे लिए ताजा चपातियां बना देती हूं," मिस पाल एक अपराधी की तरह देखती हुई बोली।

"नहीं-नहीं, जो कुछ बना रखा है वही खाएंगे," मैंने कहा। मगर अपनी इस भलमनसाहत के लिए मेरा मन अन्दर-ही-अन्दर कुढ़ गया।

मिस पाल सन्दूक का ढक्कन बन्द करके स्टोव के। पास लौट गई।

"सब्जी तीन दिन से ज्यादा नहीं चलती," वह बोली, "बाद में मैं जैम, प्याज और नमक से काम चलाती हूं। यहां अलूचे बहुत मिल जाते हैं, इसलिए मैंने बहुत-सा अलूचे का जैम बना रखा है। खाकर देखो, अच्छा जैम है। ठहो, तुम्हें प्लेट देती हूं।"

वह फिर जल्दी से बाहर चली गई और कमरे से कीलोंवाली प्लेट खाली करके ले आई।

"गिलास में अम् अ", वह आकर बोली, "सरसों का तेल रखा है। पानी तुम प्याली में ही ले लोगे या..?"

ट्राउट मछली खाना खाते समय और खाना खा चुकने के बाद भी मिस पाल के दिमाग पर ट्राउट मछली की बात ही सवार रही। जैसे भी हो, शाम को वह ट्राउट मछली बनाएगी। उसके हठ की वजह से मैंने उससे कह दिया था कि मैं अगले दिन सुबह तक वहां रह जाऊंगा। मिस पाल ने आगे का फैसला अगले दिन पर छोड़ दिया था। उसे शाम के लिए कई और चीजों का इन्तजाम करना था, क्योंकि ट्राउट मछली आसानी से तो नहीं बन जाती। पहली चीज घी चाहिए था। डिब्बे में घी नाममात्र को ही था। प्याज और मसाला भी घर में नहीं था। मिट्टी का तेल भी चाहिए था। खाने के बाद हम लोग घूमने के लिए निकले तो पहले वह मुझे साथ बाजार में ले गई। हट वार के पास भी घी नहीं था। उसके लिए मिस पाल ने पोस्टमास्टर से अनुरोध किया कि वह अपने घर से उसे शाम के लिए आधा सेर घी भिजवा दे, अगले दिन कुल्लू से लाकर लौटा देगी। उससे उसने यह भी कहा कि वह अपने घर के थोड़े-से फ्रेंच बीन भी उतरवाकर उसे भेज दे, और कोई मछलीवाला उधर से गुजरे तो उसके लिए सेर-भर ट्राउट ले रखे।

"सब्बरवाल साहब, मैं आपको बहुत तकलीफ देती हूं," वह चलने से पहले सात-आठ बार उसे धन्यवाद देकर बोली, 'मगर देखिए, मेरे मेहमान आए हुए हैं, और यहां ट्राउट के अलावा कोई अच्छी चीज मिलती नहीं। देखती हूं, अगर बाली मुझे मिल जाए तो मैं उससे कहूंगी कि वह मुझे दरिया से एक मछली पकड़ दे। मगर बाली का कोई भरोसा नहीं। आप जरूर मेरे लिए ले रखिएगा। मैंने मिसेज एटकिन्सन को भी कहला दिया है। उन्होंने भी ले ली तो मैं आज और कल दोनों दिन बना लेंगी। ध्यान रखिएगा। कई बार मछलीवाला आवाज नहीं लगाता और ऐसे ही निकल जाता है।

बैंक यू। बैंक यू वेरी मच !" मेरे सामान के लिए उसने कुल्लू फोन भी करा दिया। अब सड़क पर चलती हुई वह सुबह के नाश्ते की बात करने लगी।

"रात को तो ट्राउट हो जाएगी, मगर सुबह नाश्ता क्या बनाया जाए ? डबल रोटी यहां यहां नहीं मिलेगी, नहीं तो मैं तुम्हें शहद के टोस्ट ही बनाकर खिलाती। अच्छा खैर, देखो।"

सड़क पर खुली धूप फैली थी और भेड़ों और पशम के बकरों का रेवड़ हमारे आगे-आगे चल रहा था। साथ दो कुत्ते जीभ लपलपाते हुए पट्टेदारी करते जा रहे थे। सामने से एक जीप के आ जाने से रेवड़ में खलबली मच गई। बकरीवाले भेड़ों को पहाड़ की तरफ धकेलने लगे। एक भेड़ का बच्चा ढलान से फिसल गया और नीचे से सिर उठाकर मिमियाने लगा। किसी बकरीवाले का ध्यान उसकी तरफ नहीं गया तो मिस पाल सहसा परेशान हो उठी, "ए भाई, देखो वह बच्चा नीचे जा गिरा है। बकरी- वाले, एक बच्चा नीचे खाई में गिर गया है, उसे उठा लाओ। ए भाई !"

एक दिन पहले वर्षा हुई थी, इसलिए ब्यास खूब चढ़ा हुआ था। नुकीली चट्टानों से छित्तता और कटता हुआ पानी शोर करता हुआ बह रहा था। सामने दरिया पार करने का झूला था। झूले की चखियां घूम रही थीं, रस्सियां इकट्ठी हो रही थीं और झूला दो व्यक्तियों को लिए हुए इस पार से उस पार जा रहा था। सहसा भूले में बैठे हुए दोनों व्यक्ति 'ही-ही-ही-ही' करके हंसने लगे, जैसे किसी को चिढ़ा रहे

हों। फिर उनमें से एक ने जोर से छींक दिया। भूला उस पार पहुंच गया और वे व्यक्ति उसी तरह हंसते और छींकते हुए उससे उतर गए। भूला छोड़ दिया गया, और उसकी रस्सियां इस सिरे से उस सिरे तक आधी गोलाइयों में फैल गई। जो व्यक्ति उधर उतरे थे, वे उस किनारे से फिर एक बार जोर से हंसे। तभी भूला खींचनेवालों में एक लड़का मचान से उतरकर हमारे पास आ गया। वह ऐसे बात करने लगा जैसे अभी-अभी कोई दुर्घटना होकर हटी हो।

"मिस साहब," उसने कहा, यह वही सुदर्शन है, जिसने आपके कुत्ते को कुछ खिलाया था। यह अब भी शरारत करने से बाज नहीं आता।"

उन व्यक्तियों के हंसने और छींकने का मिस पाल पर उतना असर नहीं हुआ था जितना उस लड़के की बात का हुआ था। उसका चेहरा एकदम से उत्तर गया और

आबाज खुश्क हो गई।

'यह उधर के गांव का आदमी है न?" उसने पूछा।

"हां, मिस साहव !"

"तुम पोस्टमास्टर को बताना। वे अपने-आप इसे ठीक कर लेंगे।"

"मिस साहब, यह हमसे कहता है कि यह मिस साहब...!"

"तुम इस वक्त जाओ अपना काम करो," मिस पाल उसे झिड़ककर बोली "पोस्टमास्टर से कहना वे इसे एक दिन में ठीक कर देंगे।"

"मगर मिस साहब !"

"जाओ, फिर कभी उधर आकर बात करना।"

लड़के की समझ में नहीं आया कि मिस साहब से बात करने में उस समय उससे क्या अपराध हुआ है। वह सिर लटकाए हुए चुपचाप वहां से लौट गया।

कुछ देर हम लोग वहीं रुके रहे। मिस पाल जैसे थकी हुई-सी सड़क के किनारे एक बड़े-से पत्थर पर बठ गई। मैं दरिया के उस पार पहाड़ की चोटी पर उगे हुए वृक्षों की लम्बी पंक्ति को देखने लगा, जो नील आकाश और गुब्बारे जैसे सफेद बादलों के बीच खिची हुई लकीर-सी लगती थी। दरिया के दोनों तरफ पुल के सलेटी खम्भे खड़े थे, जिनपर अभी पुल नहीं बना था। खम्भों के आसपास से झड़कर थोड़ी-थोड़ी मिट्टी दरिया में गिर रही थी। मैंने उधर से आंखें हटाकर मिस पाल की तरफ देखा। मिस पाल मेरी तरफ देख रही थी। शायद वह जानना चाहती थी कि भूलेवाले लड़के की बात का मेरे मन पर क्या प्रभाव पड़ा है।

"तो आगे चलें ?" मुझसे आंखें मिलते ही उसने पूछा।

"हां चलो।"

मिस पाल उठ खड़ी हुई। उसकी सांस कुछ-कुछ फूल रही थी। वह चलती हुई मुझे बताने लगी कि वहां के लोगों में कितनी तरह के अन्ध-विश्वास है। जब पिकी बीमार हुआ तो वहां के लोगों ने सोचा था कि किसी ने उसे कुछ खिला-विला दिया है। ये अनपढ़ लोग हैं। मैंने इनकी बातों का विरोध भी नहीं किया। ये लोग अपने अन्धविश्वास एक लगेंगे !" दिन में थोड़े ही छोड़ सकते हैं! इस चीज में जाने अभी कितने बरस और रास्ते में चलते हुए वह बार-बार मेरी तरफ देखती रही कि मुझे उसकी बात पर विश्वास हुआ है या नहीं। मैंने सड़क से एक छोटा-सा पत्थर उठा लिया था और चुपचाप उसे उछालने लगा था। काफी देर तक हम लोग खामोश चलते रहे। वह खामोशी मुझे अस्वाभाविक लगने लगी तो मैंने मिस पाल से वापस घर चलने का प्रस्ताव किया।

"चलो, चलकर तुम्हारी बनाई हुई नई तस्वीरें ही देखी जाएं," मैंने कहा, "इन तीन-चार महीनों में तो तुमने काफी काम कर लिया होगा।"

"पहले घर चलकर एक-एक प्याली चाय पीते हैं," मिस पाल बोली। "सचमुच इस समय मैं चाय की गरम प्याली के लिए जिन्दगी की कोई भी चीज़ कुर्बान कर सकती हूं। मेरा तो मन था कि घर से चलने से पहले ही एक-एक प्याली पी लेते, मगर फिर मैंने कहा कि पोस्टमास्टर से कहने में देर हो जाएगी तो मछलीवाला निकल जाएगा।"

इस बात ने मेरे मन को थोड़ा गुदगुदा दिया कि तीन महीने में आया हुआ पहला मेहमान उस समय मिस पाल के लिए अपनी तस्वीरों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है।

लौटकर कॉटेज में पहुंचते ही मिस पाल चाय बनाने में व्यस्त हो गई। वह आते हुए काफी थक गई थी, क्योंकि जरा-सी चढ़ाई चढ़ने में ही उसकी सांस फूलने लगती थी, मगर वह जरा देर भी सुस्ताने के लिए नहीं रुकी। चाय के लिए उसकी यह व्यस्तता मुझे बहुत अस्वाभाविक लगी, शायद इसलिए कि मुझे खुद चाय की जरूरत महसूस नहीं हो रही थी। मिस पाल इस तरह चम्मचों और प्यालियों को ढूंढ़ने के लिए परेशान हो रही थी, जैसे उसके दस मेहमान चाय का इन्तजार कर रहे हों और उसे समझ न आ रहा हो कि कैसे जल्दी से सारा इन्तज़ाम करे।

मैं घूमकर कमरे में और बरामदे में लगी हुई तसवीरों को

देखने लगा। जिस- जिस तसवीर पर भी मेरी नजर पड़ी, मुझे लगा वह मेरी पहले की देखी हुई है। कुछ बड़ी तसवीरें थीं जो मिस पाल पंजाब के एक मेले से बनाकर लाई थी। वह अजीब-अजीब-से चेहरे थे, जिनपर हम लोग एक बार फब्तियां कसते रहे थे। जाने क्यों, मिस पाल अपने चित्रों के लिए सदा ऐसे ही चेहरे चुनती थी जो किसी न किसी रूप में विकृत हों ! मैंने सारा कमरा और बरामदा घूम लिया। दो-एक अधूरी तसवीरों को छोड़कर मुझे एक भी नई चीज़ दिखाई नहीं दी मैंने रसोईघर में जाकर मिस पाल से पूछा कि उसकी नई तस्वीरें कहां हैं।

"अजी छोड़ो भी," मिस पाल प्यालियां धोती हुई बोली, "चाय की प्याली पीकर हम लोग ऊपर की तरफ घूमने चलते हैं। ऊपर एक बहुत पुराना मन्दिर है। वहां का पुजारी तुम्हें ऐसे-ऐसे किस्से सुनाएगा कि तुम सुनकर हैरान रह जाओगे। एक दिन वह बता रहा था कि यहां कुछ मन्दिर ऐसे हैं, जहां लोग पहले तो देवता से वर्षा के लिए प्रार्थना करते हैं, मगर बाद में अगर देवता वर्षा नहीं देता तो उसे हिडिम्बा के मन्दिर में ले जाकर रस्सी से लटका देते हैं। है नहीं मजेदार बात ? जो देवता तुम्हारा काम न करे, उसे फांसी लगा दो। मैं कहती हूं रणजीत, यहां लोगों में इतने अन्धविश्वास हैं, इतने अन्धविश्वास हैं कि क्या कहा जाए ! ये लोग अभी तक जैसे कौरवों-पाण्डवों के जमाने में ही जीते हैं, आज के ज़माने से इनका कोई सम्बन्ध ही नहीं है।" और एक बार उड़ती नजर से मुझे देखकर वह चीनी ढूंढ़ने में व्यस्त हो गई। "अरे चीनी कहां चली गई? अभी हाथ में थी, और अभी न जाने कहां रख दी ? देखो, कैसी भुलक्कड़ हो गई हूं! मेरा तो बस एक ही इलाज है कि कोई हाथ में छड़ी लेकर मुझे ठीक करे। यह भी कोई रहने का ढंग है जैसे मैं रहती हूं ?"

"तुमने यहां के कुछ लैंडस्केप नहीं बनाए ?" मैंने पूछा। "तस्वीरें तो बहुत-सी शुरू कर रखी हैं, पर अभी तक पूरी नहीं कर सकी,"

मिस पाल जैसे उस मुश्किल स्थिति से बचने का प्रयत्न करती हुई बोली, "अब किसी दिन लगकर सबकी-सब तसवीरें पूरी करूंगी। तारपीन का तेल भी खत्म हो चुका है, किसी दिन जाकर लाना है। कई दिनों से सोच रही थी कि मण्डी जाकर कैनवस और रंग भी ले आऊं, पर यूं ही आलस कर जाती हूं। कुछ ड्राइंग पेपर भी जिल्द कराने हैं। अब जाऊंगी किसी दिन और सारे काम एक साथ ही कर आऊंगी।"

बात करते हुए मिस पाल की आंखें झुकी जा रही थीं, जैसे वह अपने ही सामने किसी चीज के लिए लिए अपन अपराधी हो, और लगातार बात करके अपने अपराध के अनुभव को छिपाना चाहती हो। मैं चुप रहकर उसे चाय में चीनी मिलाते देखता रहा। उसे देखते हुए उस समय मेरे मन में कुछ वैसी उदासी भरने लगी जैसी एक निर्जन समुद्र-तट पर या ऊंची पहाड़ियों से घिरी हुई किसी एकान्त पथरीली घाटी में जाकर अनायास मन में भर जाती है।

"कल से एक तो मैं अपने घर को ठीक करूंगी," मिस पाल क्षण-भर बाद फिर उसी तरह बिना रुके बात करने लगी "एक तो घर का सारा सामान ठीक ढंग से लगाना है। तुम्हें पता है, मैंने कितने चाव से दिल्ली में अपने कमरे के लिए जाली के पर्दे बनवाए थे ? वे पर्दे यहां ज्यों के त्यों बक्स में बन्द पड़े हैं; मेरा लगाने को मन ही नहीं हुआ। मैं कल ही तरखान से कहकर पर्दों के लिए चौखटे बनवाऊंगी। खाने-पीने का थोड़ा-बहुत सामान भी घर में रखना ही चाहिए; विस्कुट, मक्खन, डबलरोटी और अचार का होना तो बहुत ही जरूरी है। जो चीजें कुल्लू से मिल जाती हैं वे तो मैं लाकर रख ही सकती हूं।" तारपीन का तेल भी मुझे कुल्लू से ही मिल जाएगा।"

उसने चाय की प्याली मेरे हाथ में दे दी तो भी मेरे मुंह से कोई बात नहीं निकली, और मैं चुपचाप छोटे-छोटे घूंट भरने लगा। मेरे मन को उस समय एक तरह की जड़ता ने घेर लिया था। कहां मिस पाल के बारे में दिल्ली के लोगों से सुनी हुई वे सब बातें और कहां उसके जीवन की यह एकान्त विडम्बना !

ट्राउट मछली ! मिस पाल की सारी परेशानी के बावजूद उस दिन उसे ट्राउट नहीं मिल सकी। पोस्टमास्टर ने बताया कि मछलीवाला उस दिन आया ही नहीं। मिस पाल के बहुत-बहुत खुशामद करने पर भी मकान-मालकिन का चौकीदार बाली दरिया से मछली पकड़ने के लिए राजी नहीं हुआ। उसने कहा कि वह अपनी छड़ी पालिश कर रहा है, उसे फुरसत नहीं है। मिसेज एटकिन्सन के बच्चों ने एक मछली पकड़ी थी। मगर उसके पति ने उस दिन खासतौर पर मछली की कतलियों के लिए कहा था, इसलिए वह अपनी मछली मिस पाल को नहीं दे सकती थी। हां, पोस्टमास्टर ने फ्रेंच बीन जरूर भेज दिए। चावल और सूखे फ्रेंच बीन! रात की रोटी के लिए मिस पाल का सारा उत्साह ठण्डा पड़ गया। खाना बनाने में उसका मन भी नहीं लगा, जिससे चावल थोड़ा नीचे लग गए। खाना खाते समय मिस पाल बस अफसोस ही प्रकट करती रही।

"मैं बहुत बदकिस्मत हूं रणजीत, हर लिहाज से मैं बहुत ही बदकिस्मत हूं,"

खाना खाने के बाद हम लोग बाहर मैदान में कुर्सियां निकालकर बैठ गए तो उसने कहा। वह सिर के पीछे हाथ रखे आकाश की ओर देख रही थी। बारहीं या तेरहीं की रात होने से आकाश में तीन तरफ खुली चांदनी फैली थी। ब्यास की आवाज वातावरण में एक गूज पैदा कर रही थी। वृक्षों की सरसराहट के अतिरिक्त मैदान की घास से

भी एक धीमी-सी सरसराहट निकलती प्रतीत होती थी। हवा तेज्ज थी और सामने पहाड़ के पीछे से उठता हुआ बादल धीरे-धीरे चांद की तरफ सरक रहा था। "क्या बात है मिस पाल, तुम इस तरह गुम-सुम क्यों हो रही हो ?" मैंने कहा, "चावल थोड़े खराब हो गए, तो इसमें इस तरह उदास होने की क्या बात है !"

मिस पाल सामने पहाड़ की धुंधली रेखा को देखती रही, जैसे उसमें कोई चीज खोज रही हो।

"मैं सोचती हूं रणजीत कि मेरे जीने का कोई भी अर्थ नहीं है," उसने कहा। और वह मुझे अपने आरम्भिक जीवन की कहानी सुनाने लगी। उसे बहुत बड़ी शिकायत थी कि आरम्भ में अपने घर में भी उसे जरा सुख नहीं मिला, यहां तक कि अपने माता-पिता का स्नेह भी उसे नहीं मिला। उसकी मां ने उसकी अपनी मां ने - भी उसे प्यार नहीं किया। इसी वजह से पन्द्रह साल पहले वह अपना घर छोड़कर नौकरी करने के लिए निकल आई थी। "सोचो, मां को मेरा घर में होना ही बुरा लगता था। पिताजी को मेरे संगीत सीखने से चिढ़ थी। वे कहा करते थे कि मेरा घर-घर है रंड़ीखाना नहीं। भाइयों का जो थोड़ा-बहुत प्यार था, वह भी भाभियों के आने के बाद छिन गया। मैंने आज तक कितनी-कितनी मुश्किल से अपनी अम् अपवित्रता को बचाया है. यह मैं ही जानती हूं। तुम सोच सकते हो कि एक अकेली लड़की के लिए यह कितना मुश्किल होता है। मेरा लाहौर की तरफ घूमने जाने को मन था; वहां की कुल तसवीरें बनाना चाहती थी, मगर मैं वहां नहीं गई, क्योंकि मैं सोचती थी कि मर्द की पशु-शक्ति के सामने अम् अ ... मैं अकेली क्या कर सकूंगी। फिर, तुम्हें पता है कि डिपार्टमेंट के लोग वहां मेरे बारे में कैसी बुरी-बुरी बातें किया करते थे। इसीलिए मैं कहती हूं कि मुझे वहां के एक-एक आदमी से नफरत है। वे तुम्हारे बुखारिया और मिर्जा और जोरावरसिंह। मैं तो कभी ऐसे लोगों के साथ बैठकर एक प्याली चाय भी पीना पसन्द नहीं करती थी। तुम्हें याद है, एक बार जब जोरावरसिंह ने मुझसे कहा था..."

और फिर वह दफ्तर के जीवन की कई छोटी-छोटी घटनाएं दोहराने लगी। जब मैंने देखा कि वह फिर से उसी वातावरण में जाकर खामखाह अपना गुस्सा भड़का रही है तो मैंने उससे फिर कहा कि वह अब दफ्तर के लोगों के बारे में न सोचे, अपने संगीत और अपने चित्रों की बात ही सोचे।

"तुम यहां रहकर कुछ अच्छी-अच्छी चीजें बना लो, फिर दिल्ली आकर अपनी प्रदर्शनी करना।" मैंने कहा, "जब लोग तुम्हारी चीजें देखेंगे और तुम्हारा नाम सुनेंगे तो अपने-आप तुम्हारी कद्र करेंगे।"

"न, मैं प्रदर्शनी-अदर्शनी के किसी चक्कर में नहीं पड़गी।" मिस पाल उसी तरह सामने की तरफ देखती हुई बोली, "तुम जानते ही हो इन सब चीजों में कितनी पालिटिक्स चलती है। मैं उस पालिटिक्स में नहीं पड़ना चाहती। मेरे पास अभी तीन- चार हजार रुपये हैं, जिनसे मेरा काफी दिन गुजारा चल जाएगा। जब ये रुपये चुक जाएंगे, तो..." और वह जैसे कुछ सोचती हुई चुप कर गई। मैं आगे की बात सुनने के लिए बहुत उत्सुक था। मगर मिस पाल कुछ देर बाद कंधे हिलाकर बोली, " तो भी कुछ न कुछ हो ही जाएगा। अभी वह वक्त आए तो सही।"

बादल ऊंचा उठ रहा था और वातावरण में ठंडक बढ़ती जा रही थी। जंगल की तरफ से आती हुई हवा की गूंज शरीर में बार-बार सिहरन भर देती थी। साथ के कॉटेज में रेडियो पर पश्चिमी संगीत चल रहा था। उससे आगे के कॉटेज में लोग खिलखिलाकर हंस रहे थे। मिस पाल अपनी आंखें मूंदे हुए मुझे बताने लगी कि होशियारपुर में उसने भृगुसंहिता से अपनी कुण्डली निकलवाई थी। उस कुण्डली के फल के अनुसार इस जन्म में उसपर यह शाप है कि उसे कोई सुख नहीं मिल सकता- न धन का, न ख्याति का, न प्यार का। इसका कारण भी भृगुसंहिता में दिया था। अपने पिछले जन्म में वह सुन्दर लड़की थी और नृत्य-संगीत आदि कलाओं में बहुत पटु थी। उसके पिता बहुत-धनी थे और वह उनकी अकेली संतान थी। जिस व्यक्ति से उसका व्याह हुआ वह बहुत सुन्दर और धनी था। "मगर मुझे अपनी सुन्दरता और अपनी कला का बहुत मान था, इसलिए मैंने अपने पति का आदर नहीं किया। कुछ ही दिनों में वह बेचारा दुःखी होकर इस संसार से चल बसा। इसीलिए मुझपर अब यह शाप है कि इस जन्म में मुझे सुख नहीं मिल सकता।"

मैं चुपचाप उसे देखता रहा। अभी दिन में ही वह वहां के लोगों के अंधविश्वासों की चर्चा करती हुई उनका मजाक उड़ा रही थी। सहसा मिस पाल भी बोलते-बोलते चुप कर गई और उसकी आंखें मेरे चेहरे पर स्थिर हो गई। उसके लिपस्टिक से रंगे हुए ओठों की तह में जैसे उस समय कोई चीज कांप रही थी। काफी देर हम लोग चुप बैठे रहे। बादल ने चांद को छा लिया था और चारों तरफ गहरा अंधेरा हो रहा था। सहसा साथ के कॉटेज की बत्ती भी बुझ गई, जिससे अंधेरा और भी गहरा लगने लगा।

मिस पाल उसी तरह मेरी तरफ देख रही थी। मुझे महसूस होने लगा कि मेरे आसपास की हवा कुछ भारी हो रही है। मैं सहसा कुरसी पीछे सरकाकर उठ खड़ा हुआ । "मेरा खयाल है, अब रात काफी हो गई है," मैंने कहा, "इसलिए अब चलकर सो रहा जाए। और बातें अब सुबह होंगी।"

"हां-हां," मिस पाल भी अपनी कुर्सी से उठती हुई बोली,

"मैं अभी चलकर बिस्तर बिछा देती हूं। तुम बताओ, तुम्हारा बिस्तर बरामदे में बिछा दूं या..." "हां, बरामदे में ही बिछा दो। अन्दर काफी गरमी होगी।"

"देख लो, रात को ठंड हो जाएगी।"

'कोई बात नहीं, बरामदे में हवा आती रहेगी तो अच्छा लगेगा।"

और बरामदे में लेटे हुए मैं देर तक जाली के बाहर देखता रहा। बादल पूरे आकाश में छा गया था और दरिया का शब्द बहुत पास आया-सा लगता था। जाली से लगा हुआ मत्र.ड़ी का जाला हवा से हिल रहा था। पास ही कोई चूहा कोई चीज कुतर

रहा था। अन्दर कमरे से बार-बार करवट बदलने की आवाज सुनाई दे जाती थी। "रणजीत !" अन्दर से आवाज आई तो मेरे सारे शरीर में एक सिहरन भर गई।

"मिस पाल !"

"सरदी तो नहीं लग रही ?"

"नहीं, बल्कि हवा है, इसलिए अच्छा लग रहा है।" और तभी टप्-टप्-टप्-टप् मोटी-मोटी बूंदें पड़ने लगीं। पानी की बौछार मेरे बिस्तर पर आने लगी तो मैंने करवट बदली। बरामदे की बत्ती मैंने जलती रहने दी थी, इसलिए कई चीजें इधर-उधर बिखरी नजर आ रही थीं। बिस्तर बिछाते समय मिस पाल को घर की काफी उथल-पुथल करनी पड़ी थी। मेरी चारपाई के पास ही एक तिपाई औंधी पड़ी थी और उससे जरा आगे तसवीरों के कुछ एक फ्रेम रास्ते में गिरे थे। सामने के कोने में मिस पाल के ब्रश और कपड़े एक ढेर में उलझे हुए पड़े थे। अन्दर की चारपाई चिरमिराई और लकड़ी के फर्श पर पैरों की धप्-धप् आवाज सुनाई देने लगी। फिर सुराही से बुल्लू में पानी पीने की आवाज आने लगी।

रणजीत !"

"मिस पाल !"

"प्यास तो नहीं लगी ?"

"नहीं।"

"अच्छा, सो जाओ।"

कुछ देर मुझे लगता रहा जैसे मेरे आस-पास एक बहुत तेज सांस चल रही है जो धीरे-धीरे दबे पैरों, सारे वातावरण पर अधिकार करती जा रही है, और आसपास की हर चीज अपने पर उसका दवाव महसूस कर रही है। पानी की बौछार कुछ धीमी पड़ने लगी तो मैंने फिर से जाली की तरफ करवट बदल ली और पहले की तरह ही बाहर देखने लगा। तभी पास ही झन्न से किसी चीज के गिरने की आवाज सुनाई दी।

"क्या गिरा है रणजीत ?" अन्दर से आवाज आई।

"पता नहीं, शायद किसी चूहे ने कुछ गिरा दिया है।"

"सचमुच मैं यहां चूहों से बहुत तंग आ गई हूं।"

मैं चुप रहा। अन्दर की चारपाई फिर चिरमिराई।

"अच्छा, सो जाओ !"

सारी रात पानी पड़ता रहा। सुबह-सुबह, वर्षा थम गई, मगर आकाश साफ नहीं हुआ। सुबह उठकर चाय के समय तक मेरी मिस पाल से खास बात नहीं हुई। चाय पीते समय भी मिस पाल अधूरे-अधूरे टुकड़ों में ही बात करती रही। मैंने उससे कहा कि मैं अब पहली बस से चला जाऊंगा तो उसने एक बार भी मुझसे रुकने के लिए आग्रह नहीं किया। यूं साधारण बातचीत में भी मिस पाल काफी तकल्लुफ बरत रही थी, जैसे किसी बिलकुल अपरिचित व्यक्ति से बात कर रही हो। मुझे उसका सारा व्यवहार बहुत अस्वाभाविक लग रहा था। वह जैसे वात न करने के लिए ही अपने को छोटे-छोटे कामों में व्यस्त रख रही थी। मैंने दो-एक बार उससे हल्के-से मजाक करने का भी प्रयत्न किया जिससे तनाव हट जाए और मैं उससे ठीक से विदा लेकर जा सकूं, मगर मिस पाल के चेहरे पर हल्की-सी मुस्कराहट भी नहीं आई।

"अच्छा तो मिस पाल, अब चलने की बात की जाए," आखिर मैंने कहा, "तुम कल कह रही थीं कि तुम भी कुल्लू तक साथ ही चलोगी। तो अच्छा होगा कि तुम आज ही वहां से अपना सारा सामान भी ले आओ। बाद में तुम फिर आलस कर जाओगी।" "नहीं, मैं आलस नहीं करूंगी," मिल पाल बोली, "किसी दिन जाकर जो-जो कुछ लाना है सव ले आऊंगी।"

और फिर बरामदे में बिखरे हुए कपड़ों को बिना मतलब ही उठाकर इधर से उधर रखते हुए उसने कहा, "आज बरसात का दिन है, इसलिए आज नहीं जाऊंगी। कल या परसों किसी समय देखूंगी। लाने के लिए कितनी ही चीजें हैं, इसलिए अच्छी तरह सब सोचकर जाना चाहिए। आज घिरा हुआ दिन है, इसलिए आज नहीं..।"

"घिरा हुआ दिन है तो क्या घर का सामान नहीं आएगा ?" मैंने अपने आग्रह से उसे सुलझाने की चेष्टा करते हुए कहा, "तुम मुझे बताओ कि घी और तारपीन के डिब्बे कहां रखे हैं। कोई बड़ा थैला हो तो वह भी साथ में ले लो। फुटकर चीजें उसमें आ जाएंगी। यहां से जो भी बस मिलेगी, उसमें हम लोग साथ-साथ चले चलेंगे। मैं कुल्लू से बारह बजे की बस पकड़कर आगे चला जाऊंगा। तुम्हें तो उधर से लौटने के लिए सारा दिन बसें मिलती रहेंगी।"

मैं जान-बूझकर इस तरह बात कर रहा था जैसे मिस पाल का साथ चलना निश्चित ही हो, हालांकि मैं जानता था कि वह टालने का पूरा प्रयत्न करेगी। मिस पाल इधर से उधर जाती हुई ढूंढ-ढूंढ़कर अपने करने के लिए काम निकाल रही थी। उसके चेहरे से लग रहा था जैसे मेरी बातें उसे बिलकुल व्यर्थ लग रही हों और वह जल्द- अज-जल्द अपने एकान्त में लौट जाना चाहती हो।

"देखो, कभी-कभी यहां बस में एक भी सीट नहीं मिलती," उसने कहा, "दो-दो सीटें मिलना तो बहुत ही मुश्किल है। तुम मेरी बजह से अपनी बारह बजे की बस क्यों मिस करते हो ? तुम चले जाओ, मैं कल या परसों जाकर जो कुछ भी मुझे लाना है ले आऊंगी।" और जैसे सहसा कोई काम याद आ जाने से वह जल्दी से अपना चेहरा दूसरी तरफ हटाए हुए कमरे में चली गई। कुछ देर में वह पेटीकोट लिए हुए कमरे से बाहर आई। पेटीकोट को टिड्डियां काट गई थीं। उसने जैसे नुकसान की परेशानी की वजह से ही चेहरा सख्त किए हुए उसे एक तरफ कोने में फेंक दिया और किसी तरह कठिनाई से बोली, "मैंने तुमसे कह दिया है कि तुम चले जाओ। तुम्हें पता है कि मुझे तो अकेली को ही दो सीटें चाहिए।"

"ये सब बहाने तुम रहने दो," मैंने कहा। "एक बस में जगह नहीं मिलेगी तो दूसरी में मिल जाएगी। तुम इधर आकर मुझे बताओ कि वे डिब्बे कहां रखे हैं।" मिस पाल शायद ज्यादां वात नहीं करना चाहती थी, इसलिए उसने मेरी बात का विरोध नहीं किया।

"अच्छा तुम बैठो, मैं अभी ढूंढ़ती हूं," उसने कहा और आंखें बचाती हुई रसोई- घर में चली गई।

पहली बस में सचमुच हम लोगों को जगह नहीं मिली। ड्राइवर ने बस वहां रोकी ही नहीं, और हाथ के इशारे से कह दिया कि बस में जगह नहीं है। दूसरी बस में भी जगह नहीं थी, मगर किसी तरह कह-कहाकर हमने उसमें अपने लिए जगह बना ली। मगर हम कुल्लू काफी देर से पहुंचे, क्योंकि रात की बरसात से एक जगह सड़क टूट गई थी और उसकी मरम्मत की जा रही थी। हमारे कुल्लू पहुंचने के लगभग साथ ही बारह बजे का वस भी मनाली से आ पहुंची। पौने बारह हो चुके थे। मैंने अन्दर जाकर अपने सामान का पता किया, फिर बाहर मिस पाल के पास आ गया। मिस पाल ने खाली डिब्बे अपने दोनों हाथों में संभाल रखे थे। मैं डिब्बे उसके हाथों से लेने लगा तो उसने अपने हाथ पीछे हटा लिए।

"चलो, पहले बाजार में चलकर तुम्हारा सामान खरीद लें," मैंने कहा। "अब सामान की बात रहने दो," उसने कहा। "तुम्हारी बस आ गई है, तुम इसमें चले जाओ। सामान तो मैं किसी भी समय खरीद लूंगी। तुम्हें इसके बाद फिर किसी बस में जगह नहीं मिलेगी। दो बजे की बस मनाली से ही भरी हुई आती है। तुम्हारा एक दिन और यहां खराब होगा।"

"दिन खराब होने की क्या बात है," मैंने कहा। "पहले चलकर बाजार से सामान खरीद लेते हैं। अगर आज सचमुच किसी बस में जगह नहीं मिली तो मैं तुम्हारे साथ लौट चलूंगा और कल किसी बस से चला जाऊंगा। मुझे वापस पहुंचने की ऐसी कोई जल्दी नहीं है।"

"नहीं तुम चले जाओ," मिस पास हठ के साथ बोली, "अपने लिए खामखाह मैं तुम्हें क्यों परेशान करूं ? अपना सामान तो मैं जब कभी भी ले लूंगी।" "मगर मुझे लगता है कि आज तुम ये डिब्बे इसी तरह लिए हुए ही लौट

जाओगी।" "अरे नहीं," मिस पाल की आंखें उमड़ आईं और वह अपने आंसओं को रोकने के लिए दूसरी तरफ देखने लगी, "तुम समझते हो मैं अपने शरीर की देखभाल ही नहीं करती। अगर न करती तो यह इतना शरीर ऐसे ही होता?... लाओ पैसे दो मैं तुम्हारा

टिकट ले आती हूं। देर करोगे तो इस बस में भी जगह नहीं मिलेगी।" "तुम इस तरह जिद क्यों करती हो मिस पाल ? मुझे जाने की सचमुच ऐसी कोई जल्दी नहीं है।" मैंने कहा।

"मैंने तुमसे कहा है, तुम पैसे निकालो, मैं तुम्हारा टिकट ले आ। मगर नहीं, तुम रहने दो। कल का तुम्हारा टिकट मेरी वजह से खराब हुआ था। मैं फिर तुमसे पैसे किसलिए मांग रही हूं?"

और वह डिब्बे वहीं रखकर झटपट टिकटघर की तरफ बढ़ गई।

"ठहरो, मिस पाल," मैंने असमंजस में अपना बटुआ जेब से निकाल लिया।

"तुम रुको, मैं अभी आ रही हूं। तुम उतनी देर में अपना सामान निकलवाकर ऊपर रखवाओ।

मेरा मन उस समय न जाने कैसा हो रहा था, फिर भी मैंने अन्दर से अपना सामान निकलवाया और बस की छत पर रखवा दिया। मिस पाल तब तक टिकटघर के बाहर ही खड़ी थी। शनिवार होने के कारण उस दिन स्कूल में जल्दी छुट्टी हो गई थी और बहुत-से बच्चे बस्ते लटकाए सुलतानपुर की पहाड़ी से नीचे आ रहे थे। कई बच्चे बस की सवारियों को देखने के लिए वहां आसपास जमा हो रहे थे। मिस पाल उस समय प्याजी रंग की सलवार-कमीज पहने थी और ऊपर काला दुपट्टा लिए थी। उन कपड़ों की वजह से उसका शरीर पीछे से और भी फैला हुआ लगता था। बच्चे एक-दूसरे से आगे होते हुए

टिकटघर के नजदीक जाने लगे। मिस पाल टिकटघर की खिड़की पर झुकी हुई थी। एक लड़के ने धीरे से आवाज लगाई, "कमाल है भई कमाल है !"

इस पर आसपास खड़े बहुत-से बच्चे हंस दिए। मुझे लगा जैसे किसीने मेरे भारी मन पर एक और बड़ा पत्थर डाल दिया हो। बच्चे सबके सब टिकटघर के आस- पास जमा हो गए थे और आपस में खुसर-पुसर कर रहे थे। मैं उनसे कुछ कह भी नहीं सकता था, क्योंकि उससे मिस पाल का ध्यान खामखाह उनकी तरफ चला जाता। मैं उधर से अपना ध्यान हटाकर दरिया की तरफ से आते हुए लोगों को देखने लगा । फिर भी बच्चों की खुसर-पुसर मेरे कानों में पड़ती रही। दो लड़कियां बहुत धीरे-धीरे आपस में बात कर रही थीं, "मर्द है।"

"नहीं, औरत है।"

"तू सिर के बाल देख, बाकी शरीर देख। मर्द है।"

"तू कपड़े देख, और सब कुछ देख। औरत है।"

"आओ, बच्चों आओ, पास आकर देखो," मिस पाल की आवाज़ से मैं जैसे चौंक गया। मिस पाल टिकट लेकर खिड़की से हट आई थी। बच्चे उसे आते देखकर 'आ गई, आ गई' कहते भाग खड़े हुए। एक बच्चे ने सड़क के उस तरफ जाकर फिर जोर से आवाज लगाई, "कमाल है भई कमाल है !"

मिस पाल सड़क पर आकर कई कदम बच्चों के पीछे चली गई।

"आओ बच्चो, , यहां हमारे पास आओ," वह कहती रही, "हम टॉफियां देंगे। आओ..." म तुम्हें मारेंगे नहीं,

मगर बच्चे पास आने के बजाय और भी दूर भाग गए। मिस पाल कुछ देर सड़क के बीच रुकी रही, फिर लौटकर मेरे पास आ गई। उस समय उसके चेहरे का भाव बहुत विचित्र लग रहा था। उसकी आंखों में आए हुए आंसू नीचे गिरने को हो रहे थे और उन्हें झुठलाने के लिए एक फीकी हंसी का प्रयत्न कर रही थी। उसने अपने ओठों को जाने किस तरह काटा था कि एकाध जगह से उसकी लिपस्टिक नीचे फैल गई थी। उसकी थिसी हुई कमीज की सीवनें कंधे के पास से खुल रही थीं। "खूबसूरत बच्चे थे; नहीं?" उसने आंखें झपकाते हुए कहा।

मैंने उसकी बात का समर्थन करने के लिए सिर हिलाया तो मुझे लगा कि मेरा सिर पत्थर की तरह भारी हो गया है। उसके बाद मेरी समझ में कुछ नहीं आया कि मिस पाल मुझमे क्या कह रही है और मैं उससे क्या बात कर रहा हूं; जैसे आंखों और शब्दों के साथ विचारों का कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा था। मुझे इतना याद है कि मैंने मिस पाल को टिकट के पैसे देने का प्रयत्न किया, मगर वह रिछे हट गई और मेरे बहुत अनुरोध करने पर भी उसने पैसे नहीं लिए। मगर किस अवचेतन प्रक्रिया से हम लोगों के बीच अब तक बातचीत का सूत्र बना रहा, यह मैं नहीं जान सका। मेरे कान उसे बोलते सुन रहे थे और अपने को भी। परन्तु वे जैसे दूर की ध्वनियां थीं- अस्फुट, अस्पष्ट और अर्थहीन। जो बात मैं ठीक से सुन सका वह यही थी, "और वहां जाकर रणजीत, दफ्तर में मेरे बारे में किसी से बात मत करना। समझे ? तुम्हें पता ही है कि वे लोग कितने ओछे हैं। बल्कि अच्छा होगा कि तुम किसी को यह भी न बताओ कि तुम मुझे यहां मिले थे। मैं नहीं चाहती कि वहां कोई भी मेरे बारे में कुछ जाने या बात करे। समझे।"

बस तब स्टार्ट हो रही थी और मैं खिड़की से झांककर मिस पाल को देख रहा था। बस चली तो मिस पाल हाथ हिलाने लगी। दोनों खाली डिब्बे वह अपने हाथों में लिए हुए थी। मैंने भी एक बार उसकी तरफ हाथ हिलाया और बस के मुड़ने तक हिलते हुए खाली डिब्बों को ही देखता रहा।

मिसपाल : कामकाजी महिलाओं का अकेलापन

डॉ. गौरी त्रिपाठी

'मिसपाल' न सिर्फ मोहन राकेश की एक 'सिग्नेचर' कहानी है बल्कि नई कहानी की भी एक सशक्त 'सिग्नेचर' है। ऊब,अकेलेपन और एकरसता की जैसी सघन और निर्मम अभिव्यक्ति इस कहानी में संभव हो सकी है वैसा न तो पूर्ववर्ती युग की किसी कहानी में दिखाई देता है, और न उसके बाद आधी सदी की यात्रा पूरी करती किसी हिंदी कहानी में।

प्रेमचंद की 'बूढ़ी काकी',प्रसाद जी की 'ममता' या ऐसी ही कई कहानियों की स्त्रियां मुझे एक साथ याद आ रही है, जिनमें धर्मवीर भारती की 'गुलकी बन्नो'अज्ञेय की 'रोज' और खुद मेरे बहुत प्रिय कहानीकार निर्मल वर्मा की 'परिंदे' आदि कहानियों की स्त्री पात्र हैं।

हाई स्कूल की परीक्षा पास करने के बाद गर्मी की छुट्टियों में मैंने पाठ्यक्रमों से बाहर जाकर पहली बार निर्मल वर्मा की कहानी 'परिंदे' पढ़ी थी। और महीनों उसकी स्मृति छाया घेरे रही थी। उसके बाद तो कहानियां और उपन्यास पढ़ने का एक ऐसा सिलसिला बना कि हिंदी साहित्य की छात्रा और फिर अध्यापिका होना मेरी नियति ही बन गयी।

नई कहानी के लगभग सभी कथाकारों ने मध्यवर्गीय अकेलेपन को लेकर एक से एक बेहतरीन कहानियां लखीं, महिला लेखिकाओं में उषा प्रियंवदा इसमें सिद्धहस्त हैं।आप उनका कोई भी उपन्यास पढ़ सकते हैं-'पचपन खंभे लाल दीवारें','रुकोगी नही राधिका' या लंबी कहानी 'आधा शहर' इनके चरित्रों की नियति ही लगती है एकांत और अकेलापन। 'परिंदे' की 'लतिका' के आसपास भी उदास सन्नाटे से घिरा एक रहस्यमय अकेलापन है। निर्मल वर्मा की काव्यमयी भाषा और विम्बात्मकता वातावरण में फैली उदासीसन को मद्धिम संगीत की लय से और ज्यादा सघन करती है।ऊपर उड़ते चले जा रहे बेठिकाना परिंदे।यहां की उदासी पाठक को बहुत तीव्रता से अपने रोमानी आगोश में लपेटती है।

जब हाई स्कूल के बाद मैंने पहली बार कोर्स से बाहर की यह कहानी पढ़ी तो उसका असर इस कदर गहरा गया था कि मैं बार-बार खुद के भीतर लतिका को जीने से लगी थी। आज तक वह कहानी मेरी बौद्धिक परिवरिश और सौंदर्य बोध का अनजाने बनी आधार प्रतीत होती है।आसपास से निरासक्त और तटस्थ लतिका सिर्फ बालकनी में बैठकर विदा होती सांझ से झुटपुटे में अपने को खोजती रहती।

बात मोहन राकेश की कहानी 'मिस पाल' और इसी बहाने कामकाजी महिलाओं के अकेलेपन की है। मिस पाल दिल्ली जैसे महानगर के सूचना विभाग में 500 रुपये महीने की अच्छी खासी नौकरी कर रही है। जब यह कहानी लिखी गई थी, तब 500 रुपये महीने की नौकरी आर्थिक संरचना की दृष्टि से सम्पन्न मध्यवर्ग का आभास कराती है। वह यौवन की दहलीज पर होने के बावजूद आकर्षण विहीन, कुरूप और थुलथुल है। अगर वह सुंदर तथा आकर्षक होती तो भी समस्याएं होतीं पर दूसरे

किस्म की। जैसी उषा प्रियंवदा की कहानी 'आधा शहर' में है। आधा शहर कहानी में विश्वविद्यालय का परिवेश है।कहानी की मुख्य चरित्र 'इला' है। मिस पाल से उलट इला खूबसूरत और आकर्षक है।सहकर्मियों के बीच अपने चरित्र को लेकर अफवाहों से इस कदर घिरी है कि उसमे आधा शहर उसके साथ हमविस्तर हो चुका है।वे कोई सड़कछाप शोहदे नहीं, सब विश्वविद्यालय के प्रोफेसर हैं। किताबों से ज्यादा अध्यापिकाओं और छात्राओं की रुचि।

कुरूप मिसपाल सहकर्मियों के बीच फब्तियों से आहत है तो सुंदर सुरुचि सम्पन्न इला चारित्रिक अफवाहों से। एक जगह वह झुंझला कर कहती है-" एक पुरुष पचास स्त्रियों से प्रेम करता फिरता है,उसे तुम्हारा समाज कुछ नहीं कहता? एक स्त्री अगर अकेली,सम्मान से जीना चाहती है तो उसके चारों तरफ गिद्ध नोच खाने को तैयार रहते हैं

xxxx

और होता क्या है चरित्रहीन होना? चरित्र है क्या? क्या है उसकी परिभाषा? उसका सामाजिक संदर्भ दिया किसने है? तुम्हीं पुरुषों ने न ?

xxxx

इतनी हिंसा-इतना प्रतिकार….. मुझे मिटा देने की इतनी तिलमिलाहट, कितने दयनीय हैं वे तुम्हारे मित्र….. यूनिवर्सिटी के जाने माने लोग।"

इन दोनों कहानियों में कथानक के स्तर पर कोई समानता नहीं है बस दोनों स्त्रियों-मिसपाल और इला के आसपास पुरुष सहकर्मियों का सामान्य व्यवहार एक जैसा है।

सहकर्मी भले ही लिख लोढा, पढ़ पत्थर हों , किसी न किसी बहाने महिलाओं का मजाक उड़ाना उनकी आदतन नियति है। अपनी स्वाभाविक कुंठा की अहंकारोक्तियाँ आम तौर पर पुरुषों में पायी जाने वाली स्त्री संबंधी एक विशेषता है।

बचपन में मां और पिता से भी मिस पाल को कभी कोई आत्मीयता नसीब न हुई थी। चित्रकारी और संगीत में उसकी रुचि थी।उसी में वह अपने जीवन की सार्थकता का भ्रम ओढ़े थी, लेकिन पिता जिस मानसिक संरचना के थे उसके चलते उनकी नजर में यह सब अभद्र किस्म का नाच गाना था।

पूरी जिंदगी ही मानो उपेक्षा का पर्याय हो गयी हो मिसपाल । आजिज आकर एक दिन वह दिल्ली छोड़ने का निर्णय लेती और कुल्लू से बारह-चौदह किलोमीटर अलग, मुख्य सड़क के पास बसे रायसन गांव में रहने चली जाती है।

यहीं एक दिन उसके आफिस का सहकर्मी रणजीत मिल जाता है । ऑफिस में काम करते हुए मिसपाल की थोड़ी बहुत आत्मीयता इसी रणजीत से थी।रणजीत उस एक रात मिसपाल के कॉटेज में ही रुक जाता है। उस रात मिस पाल पहली बार रणजीत से अपनी जिंदगी के बीते पन्नों को खोलती है -

"सोचो, माँ को मेरा घर में होना ही बुरा लगता था। पिताजी को मेरे संगीत सीखने से चिढ़ थी। वे कहा करते थे कि मेरा घर-घर है रंडीखाना नहीं। भाइयों का जो थोड़ा-बहुत प्यार था, वह भी भाभियों के आने के बाद छिन गया। मैंने आज तक कितनी-कितनी मुश्किल से अपनी पवित्रता को बचाया है, यह मैं ही जानती हैं। तुम सोच सकते हो कि…"

दिल्ली की अच्छी खासी नौकरी छोड़कर इस बेगानी जगह में मिसपाल एक निचाट तंगहाली की एकांत दरिद्रता में बसर कर रही है। इस पूरे परिवेश में लद्धड़ ढंग से फैली ऊब,अभाव और दरिद्रता को जिस निस्संगता से मोहन राकेश ने उकेरा है, वह विरले कथाकारों के वश का है। अपनी हर कहानी की तरह डबडबाई आंखों के अचीन्हे आंसुओं की तरल भावुकता मिसपाल में भी दिख जाती है । संकेतात्मक विम्ब विधान वैसे भी नई कहानी की एक प्रमुख विशेषता रही है। रणजीत से वह अपने को शापित होने की एक मन गढ़न्त कहानी भी बताती है- "अपने पिछले जन्म में वह सुंदर लड़की थी और नृत्य-संगीत आदि कलाओं में बहुत पटु थी। उसके पिता बहुत धनी थे और वह उनकी अकेली संतान थी। जिस व्यक्ति से उसका ब्याह हुआ वह बहुत सुंदर और धनी था। "मगर मुझे अपनी सुंदरता और अपनी कला का बहुत मान था, इसलिए मैंने अपने पति का आदर नहीं किया । कुछ ही दिनों में वह बेचारा दुखी होकर इस संसार से चल बसा। इसीलिए मुझ पर अब यह शाप है कि इस जन्म में मुझे सुख नहीं मिल सकता।"

अपने बारे में मिस पाल का यह एक खूबसूरत और रचा हुआ झूठ है, जिसकी आड़ लेकर वह अपने जीवन की तमाम विडंबनाओं को सहे जा रही है।और इस विश्वास के साथ कि पिछले जन्म में अपने रूप और हुनर के जिस घमंड में आकर उसने अपने पति की उपेक्षा की थी उसी का प्रायश्चित उसे इस जन्म में करना पड़ रहा है।

मिसपाल की स्थितियां भिन्न हैं। वह बिना शादी या बच्चों के अकेली रहकर दिल्ली में नौकरी कर रही है। सहकर्मी गाहे ब गाहे उसका मजाक उड़ाया करते है। लेकिन मान लीजिए उसका परिवार होता तो अनेक तरह की व्यस्तताओं के बावजूद उसके संघर्ष और उसका अकेलापन क्या कम होता? 'रोज' की 'मालती' तो ठंडी एकरसता में इस कदर विलीन हो गई है कि अपनी स्मृतियों से भी उसकी पहचान ही मिट गई है। घर की चारदीवारी में खत्म होती स्त्री की पीड़ा अलग है । कामकाजी महिलाओं को आमतौर पर कई किस्म की मुश्किलें एक साथ घेरे रहती हैं।हमारी सामाजिक संरचना में स्त्री के लिए बचपन की स्मृतियों के साथ जीना असंभव है। वह पूरी

तरह यथार्थ को स्वीकार करे और उसी के साथ समर्पण भाव से जिये। लगभग पशुता की स्थिति में।

कल्पना,स्वच्छंदता,हंसना,कविता,चित्रकारी आदि की रोमानी दुनिया उसके लिए नाना किस्म की अफवाहों, लांछनाओं से भरी होती है।

पुरषो की बनाई दुनिया में स्त्री अपने मन से नहीं जी सकती। वह बल पूर्वक,छल पूर्वक उसे बहिष्कृत करता है। मिसपाल लगातार भाग रही है। पहली बार पंद्रह साल की उम्र में मां-बाप के घर से भाग कर दिल्ली आती है। फिर ऑफिस के सहकर्मियों के चलते दिल्ली से भागकर कुल्लू के पास रायसन चली जाती है। वह लगातार एक अंधेरे से दूसरे अंधेरे की ओर भाग रही है। शिमला, मनाली, नैनीताल की पहाड़ियों के 'लोकेल' पर नई कहानी के दौर में टूटे प्रेम की खूबसारी रोमानी कहानियां, जिनमें एक उदास संगीत की मद्धिम लय होती है, लिखी गई हैं। उन सबसे उलट मिसपाल के यहां एक अंधेरा है। स्त्री की नियतिऔर हिस्से का अंधेरा। इसी अंधेरे में घिरी मिसपाल की कल्पनाओं में एक राजकुमार जैसा पति है जिसे उसने घमंड वश प्यार नहीं किया था। वह उसी के प्रायश्चित स्वरूप अपने जीवन का अंधेरा जी रही है।

रात तक रणजीत को भी लगने लगता है कि मिस पाल जो शाम तक उसे कई दिन तक यहां रुकने का आग्रह कर रही थी अब उससे भी ऊबने लगी है।शायद इस लिए भी कि इस बीच वह लगातार बेपर्द होती जा रही है। इतने समय तक साथ रहकर वह बाहर बरामदे में सो जाता है।कमरे के भीतर मिस पाल । थोड़ी- थोड़ी देर बाद - रणजीत!- अंदर से आवाज आई तो मेरे सारे शरीर में एक सिहरन भर गई- सरदी तो नहीं लग रही?"

फिर थोड़ी देर बाद- अंदर की चारपाई चिरमिराई और लकड़ी के फर्श पर पैरों की धप्-धप् आवाज सुनाई देने लगी। फिर सुराही से चुल्लू में पानी पीने की आवाज आने लगी।

"रणजीत !

प्यास तो नहीं लगी?"

ऐसे ही कभी चूहों की उछल कूद में कुछ गिरने की आवाजें।जाहिर है मिस पाल को रात भर नींद नहीं आती।

दूसरे दिन रणजीत वापस लौटने को होता है। वह चाहता है कि मिसपाल कुल्लू तक उसके साथ बस से चले और अपनी दिनचर्या की चीजें वहीं से खरीद लाये।कुल्लू तक उसका साथ भी रहेगा। मिसपाल कुछ टीन के डब्बे साथ लेकर बस अड्डे तक चलती भी है, फिर अचानक उसके भीतर की ऊब प्रबल होने लगती है और वह कुल्लू तक जाने को स्थगित कर देती है।रणजीत उससे साथ चलने की जिद करता रहा जाता है लेकिन वह नहीं जाने का मन बना चुकी होती है। उसका मन शायद रणजीत से भी ऊब चुका है और वह जल्दी ही उसे विदा करके अपने एकांत अंधेरे में लौटने का मन बना चुकी है।

बस अड्डे पर कहानी का अंत अपनी करुणा और विद्रूप व्यंग के चरम पर पहुंचने लगती है।मिसपाल बस अड्डे की खिड़की पर रणजीत के लिए टिकट खरीदने जाती है।एक खाली डिब्बे की तरह थुलथुल मिसपास को देखकर गांव के छोटे- छीटे लड़के उसपर फब्तियां कसते हैं-

"एक लड़के ने धीरे-से आवाज लगाई, "कमाल है भई कमाल है !"

इस पर आसपास खड़े बहुत-से बच्चे हँस दिए। मुझे लगा जैसे किसी ने मेरे भारी मन पर एक और बड़ा पत्थर डाल दिया हो। बच्चे सबके सब टिकटघर के आसपास जमा हो गए थे और आपस में खुसर-पुसर कर रहे थे। मैं उनसे कुछ कह भी नहीं सकता था, क्योंकि उससे मिस पाल का ध्यान खामखाह उनकी तरफ चला जाता। मैं उधर से अपना ध्यान हटाकर दरिया की तरफ से आते हुए लोगों को देखने लगा। फिर भी बच्चों की खुसर-पुसर मेरे कानों में पड़ती रही। दो लड़कियाँ बहुत धीरे-धीरे आपस में बात कर रही थीं, "मर्द है।"

"नहीं, औरत है ।"

"तू सिर के बाल देख, बाकी शरीर देख। मर्द है।"

"तू कपड़े देख, और सब कुछ देख। औरत है।"

"आओ, बच्चो आओ, पास आकर देखो," मिस पाल की आवाज से मैं जैसे चौंक गया। मिस पाल टिकट लेकर खिड़की से हट आई थी। बच्चे उसे आते देखकर 'आ गई, आ गई' कहते भाग खड़े हुए। एक बच्चे ने सड़क के उस तरफ जाकर फिर जोर से आवाज लगाई, "कमाल है भई कमाल है।"

रणजीत बस से चला जाता है। रायसन में अकेली बच रहती है मिसपाल। मिसपाल दिल्ली में अपनी कुरूपता को लेकर सहकर्मियों की फब्ती से भागकर कुल्लू के पास एक निरापद गांव रायसन में रहने चली आती है। इस मामूली बात के लिए वह अपनी नौकरी तक छोड़ देती है, लेकिन वे फब्तियां यहां भी उसका पीछा नहीं छोड़तीं। वैसे तो यह एक विशिष्ट किस्म की चरित्र प्रधान कहानी है, लेकिन कई अर्थों में समूची स्त्रियों की भी कहानी है।अपने मन का जीवन जीने की छूट स्त्री को नहीं है। पुरुष एक साथ स्त्री में सौदर्य और समर्पण दोनों चाहता है। नई कहानी में पहाड़ी शहरों और कस्बों को लेकर जो रूमानी छवियाँ गढ़ी गयी थीं, उसका निषेध रचती है मिसपाक। स्त्रियों के मामले में चाहे दिल्ली हो चाहे रायसन,चाहे अबोध बच्चे हों या प्रोफेसर सब एक ही तरह से पेश आते हैं।

प्रो. आलोक कुमार चक्रवाल जी

की

सात कविताएँ

वक्त

कभी लम्हा वक्त बन जाता है,
कभी वक्त लम्हें में बदल जाता है।

जमाना हो गया,
मैं भी उम्मीद करता था,
वक्त की, अच्छे वक्त की,
मेरे वक्त की।
वो वक्त,
जिसे मैं अपना कह सकूँ।

किसी ने बड़े प्यार से कहा था,
'मेरा भी वक्त आएगा',
किसी ने बड़े नाज़ से कहा था,
'तेरा वक्त ज़रूर आएगा।'

मैं अब भी उस लम्हें को याद करता हूँ,
उस लम्हें के हर कतरे को याद करता हूँ,
मुझे दरकार है उस गुजरे लम्हें की,
कहता हूँ हर चंद क्या है मेरा लम्हां।

वक्त बड़ा अच्छा लगता है,
इसे सुनना, इसकी बातें सुनना,
वक्त-वक्त की बातें हैं।
यही सोच कर खुश हो लेता हूँ,
आज नहीं तो कल मेरा भी वक्त आएगा।

बड़ी अजीब बात है,
वक्त आता है,चला जाता है,
और मासूम लम्हों को उलझा जाता है।

बड़े यकीं से इक लम्हें को पकड़ा मैंने,
पूछा मैंने अब बता दे मेरे यार,
कहाँ छुपा रखा है मेरे वक्त को तूने।

लम्हा बड़ा शरारती निकला,
थोड़ा नटखट और खुराफाती निकला,

बोला जिस दिन तूने पकड़ लिया मुझे,
तेरा वक्त खुद-ब-खुद निकल आएगा,
बेलिहाज़ हो कर तेरी आगोश में सिमट जाएगा।

वक्त तेरा कहीं और नहीं,
तेरी आँखों में छिपा अक्स कोई और नहीं,
तेरा वक्त तो तू खुद है,
तेरा हर लम्हा तेरे वक्त में है।

मुझे क्यों पकड़ते हो,
पकड़ के क्यों इतना अकड़ते हो ?
अगर है हौसला तो मिला लो निगाहों से निगाहें,
पकड़ लो अपने वक्त को जो लोग चुरा ले जाते हैं गाहे-बगाहे

वक्त बड़ी चीज़ है,
मत समझो कि नाचीज़ है,
जिसने पा लिया,
समझो खुदा हो गया।
जिसने दिला दिया,
समझो खुदा हो गया।
लम्हा बोलता गया,
मैं अवाक् उसको तकता गया।

मानों लम्हा ना हो कोई खुदाई सी हो,
मुझसे निकला मानों कोई और 'मैं' हो।

मुझे आ गया प्यार उस लम्हें पर,
लरज गया था हर बार उस लम्हें पर।
वो कह रहा था कुछ यूँ बातें मुझसे,
मेरी हस्ती को दिखा रहा था कोई हस्ती जैसे।
वक्त की खोज बड़े वक्त से कर रहा था मैं,
कभी अपनों से,कभी परायों से बिछड़ रहा था मैं।

काश! वक्त की कोई पहचान होती,
काश!! इसकी राह थोड़ी आसान होती।
मैं लम्हें में समा जाना चाहता था,
लम्हा था के मुझसे निकल जाना चाहता था।
बातें बड़ी अच्छी सी लग रही थीं उसकी,
जज्बात बड़े प्यारे लग रहे थे उसके।

आज इक लम्हें ने,
सदियों का तारुफ़ दिया था मुझे ।
आज इक लम्हें ने,
मेरे वक्त से मिला दिया था मुझे।
मेरा वक्त कहीं और नहीं,
मेरे लम्हों में था।
मेरे लम्हें मेरे वक्त की,
तक़दीर बने बैठे थे।
आज इक लम्हें ने,
सदियों का तारुफ़ दिया था मुझे।

रौशनी और माँ

अनगिनत रौशनी मिल रही थी,
कुछ अंदर से तो कुछ फ़िज़ाओं से।
कुछ मद्धम मद्धम सा था,
तो कुछ चकाचौंध कर रही थी।

आँखें अब भी ढूंढती हैं,
उन गुलाबी रंगों को,
चमकते खास चटक रंगों को।
चेहरा मानों चेहरा न हो,
दहकता सूरज हो गया हो।

सब खेल है तो सिर्फ मद्धम,
तेज और चमकती रौशनी का।
अगर फर्क है तो सिर्फ,
मद्धम,तेज और चमकती रौशनी का।
कुछ लोग चमकते रहते हैं,
गोया चमकना ही उनकी फितरत है।

फिर बुझना भी होता है,
बेशक मंद भी पड़ते हैं,
सब खो जाता है,
चमक के बाद सिर्फ अँधेरा रह जाता है।
हाँ! कुछ ऐसे भी होते है,
बुझते हैं,और फिर चमक उठते है।

कितना मज़ा आता है,
बड़ा अच्छा भी लगता है,
बुझ के फिर से चमकना उसका।

ये दुनिया फानी है,
अनजानी भी है,
कब चमकेगी और बुझेगी,
कहाँ किसी ने जाना है ?

दिल में भी चमक उठती ही है,
सब खेल तो चमक का ही है,

चमक न होती तो कुछ भी न होता।
गरीब और अमीर का फर्क भी,
बस चमक से ही होता है।

बड़ा प्यार था उससे मुझे,
जब भी शाम होती,
एक डिबरी जल उठती,
और माँ मुझे अपने सीने से लगा लेती।
गोद में मुझे छुपा लेती थी।

अब तो उस डिबरी की मद्धम रौशनी,
मुझे बड़ी अच्छी लगती,
ये रौशनी मेरी माँ मुझे दे देती थी।
माँ का सर पर हाथ फेरना,
मुझे पुचकारना,
शेर, साधु और जंगल की कहानियां सुनाना,
सब मानों एक जादू सा लगता था।
कब नींद की आगोश में गया और कब सुबह हुई,
कहाँ पता चलता था !

अब भी जब कहीं मद्धम सी रौशनी दिखती है,
अपनी माँ को ढूंढता हूँ।
इसी आस में उजालों से दूर होता हूँ,
शायद मंद रौशनी में कहीं माँ मिल जाए।

आज मेरे घर में हर तरफ रौशनी है पर माँ नहीं है,
शेर, जंगल और साधु की कहानियां नहीं है।
माँ शायद मेरी नींद चुरा ले गई,
और मुझे ये चमकती रौशनी दे गई।

लोग कहते है,सुना है मैंने,
चमकती रौशनी तरक्की की निशानी है।
पर मैं ना समझ पाया इस फलसफे को।
इस रौशनी को बेचकर,
कुछ अँधेरा मिल जाए तो अच्छा है।
इस रौशनी के बदले,
मेरी माँ मिल जाए तो अच्छा है।

लोग मुझे पागल कह लें,
तब भी चलेगा।
पर क्या मुझे मद्धम सी रौशनी वाली,
डिबरी मिल पाएगी ?
क्या मेरी माँ फिर से मुझे मिल जाएगी ?

सब बदल जाता है,
वक्त,लोग और रौशनी भी,
पर दिल से माँ की आस क्यों नहीं जाती ?
क्यों अंधेरों में खींचा चला जाता हूँ ?
माँ तुझसे फिर क्यों नहीं मिल पाता हूँ ?

परियों का देश

परियों का है देश निराला,
कोई अनोखा, कोई मतवाला।

यहाँ वहां पर सब हैं फिरते,
नील गगन में उड़ते रहते।

यहाँ अश्व हैं पंखों वाले,
मंद महकते रंगों वाले।

कोई किसी से बैर न रखता,
मिल जुल कर आपस में रहते।

यहाँ की परियां खुशियां देती,
हर मंज़र में रंग हैं भरतीं।

पर्वत भी हैं ऊँचे ऊँचे,
देखो बादल कहाँ हैं पहुंचे।

सतरंगी दुनिया है न्यारी,
अतरंगी चीज़ें हैं प्यारी।

बिन काँटों के फूल हैं खिलते,
सुबह शाम और रात महकते।

नित कोयल है कूक सुनाती,
जुगनू संग तारे बतियाते।

हम परियों से प्यार करेंगे,
बातें उन संग चार करेंगे।

मिलना इनका मोहक लगता,
पावन मुदित मन पुलकित होता।

इन का प्यार है सीधा साधा,
ना पर्दा,ना छल की भाषा।

उत्तम अतिशय रीत यहाँ की,
गीत,मीत और प्रीत यहाँ की

परियों का है देश निराला,
बड़ा अनोखा,बहुत मतवाला।

कल की ही बात है

कल की ही बात है,
कुछ पुराने खिलौने
मिल गए थे अटारी पर।
कुछ डिब्बे,कंचे,माचिस,
और कोका कोला के ढक्कन भी।

बचपन की गलियों का
सुहाना सफर,यूँ अटारी पर मिल जाएगा
सोचा न था।

बड़े मासूम से चेहरे,
चल रहे थे मेरी नज़रों के सामने,
एक के बाद एक।

सब अपने थे,मेरे अपने,राजू,गुड़िया,
बंटी,बच्चू और भी कई
सभी खिलखिला रहे थे,
खेल रहे थे,
कूद रहे थे।

कोई किसी की पीठ पर चढ़ा था,
तो कोई अपने नए कपड़े दिखा रहा था,
कोई छुप के बातें भी सुन रहा था।

पर सब खुश थे।
ऐसे खुश जैसे,
चेहरे पर सोना चमक रहा हो।
दांत तो ऐसे लगते थे
मानों किसी ने हीरे मोती जड़ दिए हों।

चवन्नी की दस टॉफियां
सब के लिए पर्याप्त थीं
सब मिल बाँट कर खाते और खुश हो लेते थे।

मुझे याद है जब एक गौरेये
का बच्चा पेड़ से गिरा
और चुन्नू उसे उठा कर लाया,
सब ने मिलकर उसे पानी पिलाया।
जब भी नन्ही चिड़िया चीं चीं करती,
सब बच्चे सहम जाते।

फिर बड़ी मशक्कत से उसे वापस
पेड़ पर उसके घोंसले में रख आये थे।
कइयों को तो चोट भी लगी थी,
इस मशक्कत में।
पर किसी ने भी घर जाकर सही कारण नहीं बताया था।

बनवारी की गाय का बछड़ा,
एक बार घर से भाग गया था।
भरी दुपहरिया में हम उसे ढूंढने गए थे।
सारा मोहल्ला छान मारा था,
और फिर वो घर के पिछवाड़े में ही मिला था।

आज भी टाफियां मिलती हैं,
पर इम्पोर्टेड पैकिंग में,
बच्चे उसे बांटकर नहीं खाते।
फ्रिज में एक्सक्लुसिवली एक बच्चे के
लिए ही रखी होती हैं।
मज़ाल है कि कोई ग़ैर बच्चा
उसकी तरफ आँख भी उठा कर देख ले।

चुन्नू,अब शायद डॉ. शर्मा के
नाम से जाना जाता है,
अब उस में ना चुलबुलापन है,
और ना ही निर्दोष स्नेह।
कई बार ये ख़्याल आता है,
बड़ा होते ही एक इंसान
सियार कैसे बन जाता है!
कई तो लोमड़ी और गिरगिट
भी बन जाते हैं।

मेरे बचपन के दोस्त अब बड़े हो गए हैं,
सफल हो गए हैं।
बहुत पैसा और नाम कमाया है,
बस,इंसानियत बेचकर।
तरक्की के इस दौर में,
जो ना बिक जाए वो कम है।
सब कुछ बिक रहा है-
ईमान,धरम,प्यार,रिश्ते,
अपनापन और न जाने क्या क्या !

मेरी अम्मा को दादी से
कभी कभी शिकायत हो जाती थी।
सारे दिन का काम काज करके,
जब भी थोड़ा आराम करने बैठती,
अम्मा को दादी कोई ना कोई
काम पकड़ा ही देती थी।
पर मेरी अम्मा को ऐसा दुःख
उसकी बहुओं ने नहीं दिया।
वो तो उसे बड़े आराम से
ओल्ड ऐज होम में छोड़ कर आयीं।

हाईवे या शहर की सड़कों पर
जब भी कुत्तों के पिल्लों को
कारों के नीचे बेमौत मरते देखता हूँ,
तो वो गौरेया का बच्चा हर बार याद आ जाता है,
बड़े जतन से हमने उसकी जान बचायी थी।
आज का इंसान बड़े हक़ से जानवरों के जीने का हक़ छीन रहा है।
एक बड़े दूरदर्शी आदमी ने समझाया,
अगर पिल्ले को बचाता तो मेरा एक्सीडेंट हो जाता,
और शायद मैं ही मर जाता।

आज बछड़े के खो जाने पर
उसे ढूंढने कोई नहीं जाता।
एक नयी गाय या बछड़ा आ जाता है।
रिश्ते,सामान की तरह रीप्लेस होने लगे है,
इंसान और जानवर का रिश्ता
बड़ा व्यावहारिक सा हो गया है।
और मजेदार बात ये है कि
इंसानों का आपस में रिश्ता ही नहीं रहा।

वयस्कऔर परिपक्व होने का मतलब
संवेदनहीन हो जाना है।
मैं बड़ी मुश्किल में हूँ,
कुछ समझ नहीं आता।
बचपन में हम ने कभी नहीं जाना
कि चुन्नू का धर्म क्या है,
जाति क्या है
या क्या है उसका इकोनॉमिक स्टेटस?

आज किसी दोस्त को
घर पे चाय पर बुलाने से पहले,
ये सब जानना जरुरी है|
जानना जरूरी है कि एक प्याली
चाय की एवज में आपको क्या लाभ होगा।

बचपन की निर्दोष हँसी और
निश्छल खिलखिलहाट बेहद याद आती है।
ऐसा नहीं है कि हम अब नहीं हँसते हैं।
हम आज भी हँसते हैं,
खूब हँसते हैं,खिलखिलाते हैं,

किसी की नाकामी पर,
किसी की मुफलिसी पर,
किसी की गुरबत पर।
शमशान से निकल कर भी हँस लेते हैं।
कब्रिस्तान की दहलीज़ पर भी हँस लेते हैं।
कभी ज्यादा जरुरत हो तो लाफ्टर शोज़भी देख कर हँस लेते है।
किसी से मक्कारी करके भी हँस लेते हैं।
और तो और किसी से बे-यारी करके भी हँस लेते हैं।

हँसना जरुरी है वरना दर्द दिख जाएगा,
भीड़ में छुपा अकेलापन दिख जाएगा।
हँसना जरुरी है वरना लोग जान जाएंगे हमारी नाकामी को,
हमारी बेमकसद ज़िन्दगी को।
बेशक,आज हमारी हँसी में सोने की चमक ना हो,
काली रात की परछाई तो है।
बेइंतहा मक्कारी की अंगड़ाई तो है।

अटारी पर मिल गए थे कुछ पुराने सिक्के
और दे गए मुझे सारे जहाँ की दौलत का एहसास।
आज के क्रेडिट कार्ड और
ऑनलाइन ट्रांसेक्शन के दौर में
वो ख़ुशी कहाँ जो एक आने की
टॉफी और चूरन
खरीद कर मिलती थी।

मुझे याद है पंडित जी की पंसारी की दुकान।
ऑरेंज कलर का लेमनचूस बड़े शौक से
हम लाते थे और खाते थे।
एक चवन्नी काफी थी
सारे जहाँ की खुशियाँ देने के लिए,
जो दस-दस क्रेडिट कार्ड भी नहीं दे पाते आज।
गुमसुम सा हो गया था मैं।
क्या ये एहसास सिर्फ मेरी
पीढ़ी का था या फिर पीढ़ी दर पीढ़ी
चली आ रही रवायत है ये।
हर नई पीढ़ी में इंसान की
नस्ल बदल जाती है,

हम जानवरों जैसा बर्ताव करने लगते है।
जंगल से निकल कर हम
शहरों में आये थे,
और अब शहर को जंगल बना रहे हैं।

मेरी उलझने बढ़ती जा रही थीं।
क्या बचपन ही ज़िन्दगी है?
अगर है,तो हम बड़े क्यों हुए
अगर है,तो हम अपने पैरों पे खड़े क्यों हुए?

मैं उतर आया अटारी से
इस संकल्प के साथ कि
अब दोबारा वहां नहीं जाऊंगा।
अपने होने का एहसास वहीं छोड़ आया।
संवेदना की टीस को छुपा आया।
बचपन की यादों को भूल जाना बेहतर है,
सारा ज़माना भूल चुका है।

अभिलाषा

समंदर का किनारा बड़ा सुहाना,बहुत ही प्यारा,
सोचता हूँ क्यों न मैं भी समंदर बन जाऊँ?

कितना विशाल है ये समंदर,
गहराई बेपनाह है इसके अंदर,
लहरें बल खाती हैं,इठलाती हैं
साहिल को चूम जाती हैं।

कितना सुहाना है ये नज़ारा
सागर,मौजें और ये किनारा
सब कुछ बड़ा मनमोहक लगता है
दिन कब ढला कहाँ पता चलता है।

अब तो बस उसकी लहरों पर टिकी हैं निगाहें,
यूँ लगता है बातें करती हैं गोया गाहे बगाहे।

क्या नहीं है इसमें,
सब कुछ तो है इसके अंदर,
फिर भी कितनी शांत और स्थिर है ये,
सोचता हूँ क्यों न मैं भी समंदर बन जाऊँ।

कोई इसे जीतना चाहता है,
तो कोई इसमें समा भी जाता है,
अजब सा रहस्य है ये समंदर।

मैं डूबा था अपने ख्यालों में
मैं मुग्ध था अपने विचारों में
कि मंद बहती हवा ने जैसे टकोरा
ठण्ड की सिहरन ने जैसे झकझोरा।

मैंने कुछ नया सा महसूस किया,
यूँ लगा जैसे किसी ने दिल पर दस्तक दी हो।
कौन था वो अनजाना,
कौन था वो अपरिचित, बेगाना,
आखिर कौन था जो मुझे सदायें दे रहा था।

मैं विचारों में था या मुझ में विचार थे,
मैं किसी और लोक में था,
या मुझ में कुछ अलौकिक था?
मैं महक रहा था,मुझ में कुछ संवर रहा था।

बहते मंद पवन में कुछ तो खास था,
इक धमक थी,एहसास था,
कुछ नया,अदम्य,अविचल सा था
हवाओं से बातें करना नैसर्गिक भी था।
ये है तो मैं हूँ,ये है तो जीवन है
ये बसंती,पुरवाई और न जाने क्या क्या है।

सोचा मैं भी क्यों न पवन बन जाऊँ
मेरा मन भी पवन की तरह ही बहता है,
मेरा मन भी इसकी मानिन्द ही मचलता है,
अरे! मेरा मन तो एकदम पवन जैसा ही है।

ये है तो धरा है,धराकी सुन्दर छटा है,
कोयल की कूक और पपीहे के गीत हैं,
इसके ही दम पर जीवन की हूक है।

सोचा मैं भी हवा बन जाऊँ,
और इत-उत हर कोने में फिर आऊँ।

महकती हवा का नशा कुछ और होता है,
मचलती हवा का बड़ा शोर होता है।
हवाएं बदलती है,फिज़ाओं का रंग ऐसा
चमकते चाँद सा निकल आया हो मुखड़ा जैसा।

मैं भी हवा बन जाना चाहता हूँ।
महकना और बल खाना चाहता हूँ।
लोगों के दिलों में उतर जाना चाहता हूँ,
अरमान-ओ-महफ़िल में समा जाना चाहता हूँ।

सोचा मैं भी क्यों न हवा बन जाऊँ,
उसकी आगोश में चुपके से समा जाऊँ,
उसकी साँसों को अंदर तक महका आऊँ।
सोचा मैं भी पवन बन जाऊँ।

इसी उधेड़ बुन में बादल कब मंडराए,
अँधेरे घनघोर छाए,कुछ पता ही न चला।

टिप कर के एक बारिश की एक-एक बूँद
मेरी नाक से टकराई,
चेतन-अवचेतन सब कुछ हिला गई।

मैं अपनी कल्पनाओं से बाहर निकला,
ख्वाबों और ख्यालों से कहीं दूर निकला।

मन तो आखिर फिर भी मन है,
इसी को कहते चंचल चितवन हैं ।

बारिश की बूंदे बड़ी प्यारी लग रही थीं,
तन, मन, अंतरंग को दिल से भिंगो रही थीं,
जीवन को एक नया संचार मिल रहा था,
मेरे अंदर ही एक नया संसार खिल रहा था।

मैं पूछ ही बैठा –
अरी ओ वर्षा! तुम,इतनी प्यारी क्यों लगती हो ?

क्यों सब तेरा रास्ता देखें,
क्यों है सब तेरे ही रस्ते,
तेरा क्यों दीवानापन है,
तू क्यों है मन की विह्वलता,
तेरा नशा गज़ब है ग़ालिब,
मदिरा महुआ फीके लगते,
तू तो नाच नचाती है,
क्यों तू सब को लुभाती है?

गीत नए बन जाते हैं,
जब तू धरती पर आती है,
नृत्य नए बन जाते है,
जब चेहरों पर मुस्काती है,
घटा, समंदर, धरती, तारे
तेरे सदके जाते हैं,
तू जीवन से जीवन तुझसे,
सुख का राग मिलाते हैं।

मैं था मगन घटाओं में,
खोया था इन फिज़ाओं में,
रिमझिम वर्षा गीत सुनाती,
कभी धूप कभी छाँव में।
तन्द्रा टूटी, सपने छूटे,
छूटे ख्वाब ख्यालों के,
कोई था जो पूछ रहा था,
खोया हूँ किस गांव में।

अब तक आ चुका था मैं हकीकत के धरातल पर,
कोई खींच रहा था मेरा लिबास अपने नन्हे हाथों से,
मुड़ कर देखा तो एक मासूम बच्ची मेरा मुँह ताक रही थी,
गरीबी और लाचारी हर तरफ से झांक रही थी।

बच्ची ने बड़ी क्षीण आवाज़ में कहा 'भूख लगी है',
'बाबूजी! कुछ पैसे दे दो,या फिर खाना ही दे दो।'
कपड़े कम पड़ रहे थे उसके तन ढकने को,
इंसानियत जैसे मुँह छुपा रही थी मासूम चेहरे से।

मिट्टी से लथपथ पाँव तो बड़े नन्हे से थे,
आँसुओं की सूखी लकीरें चेहरे पर साफ़ दिखती थीं ,
शरीर से हड्डी और मांस का फर्क मिट सा गया था,
वो मासूम चेहरा इंसानियत का जनाजा सा लग रहा था।

मैं सुन्न पड़ गया जीव से निर्जीव हो गया,
अंदर एक तूफान सा उठा था।
शोर इतना था कि हर ओर सन्नाटा सा था,
मैं कौन हूँ, क्या हूँ, ये एक प्रश्न चिन्ह था।

ये कौन सी दुनिया है जहाँ बच्चे आज भी भूखे हैं,
ये कौन सा शहर है जहाँ के आंसू अनछुए हैं,
क्यों कोई इस मासूम को शोषित करेगा,
क्यों कोई इसके मुस्कुराने का हक़ छीनता है ?
मन खिन्न सा हो गया,
सभी सपने छिन्न भिन्न हो गए,
अब न अरमान थे न ख्वाहिशें,
न समंदर की विशालता लुभाती थी,

न हवाओं की खुशबू सुहाती थी,
बारिश की बूंदों का कोई रोमांच न था।

अगर कुछ था तो इंसानियत की बेआबरु होती तस्वीर,
तार तार होते सिद्धांतों की तकरीर,
धर्मों की निरर्थकता,

नेताओं की धन लोलुपता,
बेईमान तंत्र की निष्फलता।

हमने देखा है जानवर भी गैर बच्चों को दूध पिलाते हैं,
और यहाँ इंसान अपने-पराए पर शास्त्रार्थ कर रहा है,
फर्क समझ में आ गया,
हम इंसान नहीं,
हम जानवर भी नहीं,हम तो कुछ और ही हैं,
इसकी परिभाषा शब्दकोश में नहीं,
शायद कहीं और ही है।

मुस्कुरा लेता हूँ मैं

परत दर परत मुख़्तलिफ़ चेहरों के दौर में,
बदलती वफाओं के बड़े शोर में,
जब भी कोई मासूम सा चेहरा दिख जाए,
तो मुस्कुरा लेता हूँ मैं।

इधर गुरु का द्वार है तो उधर गिरिजा का घर,
अजान मस्जिदों की है और मंदिरों का शंखनाद भी,
चौराहों की इस भीड़ में अगर कोई 'काफ़िर' मिल जाए,
तो बेशक सर झुका लेता हूँ मैं।

उजले दामन दिखाने पे बड़ा ज़ोर है यहाँ,
तरक्की बेशुमार करने वाला मशहूर है यहाँ,
पत्थर-ओ-पीतल के इस शहर में कोई मुफ़लिस मिल जाए,
तो उसे सीने से लगा लेता हूँ मैं।

ढूंढता हूँ उसे शिद्दत से पर निशां नहीं मिलता,
उल्फत की लौ टिकी है जहाँ, वो मकां नहीं मिलता,
ख्वाबों में हो जाए उसका दीदार शायद,
इसी उम्मीद में सो लेता हूँ मैं।

पेड़ से टूटा पत्ता कुछ कहता है मुझको,
झुण्ड से बिछड़ा पंछी क्यों तकता है मुझको,
मेरे दुःख से इनका दर्द शायद बड़ा है,
यही सोचकर आँसुओं को रोक लेता हूँ मैं।

हर कोई कर रहा है नुमाइश अपनी नीयत की,
गोया, हो रही हो पैमाइश इंसानियत की,
आज नहीं तो कल ईमान मिल ही जाएगा,
इसी फरेब में जी लेता हूँ मैं।

बदस्तूर चल रहा है कारोबार उनका,
अच्छाइयों से कब रहा है सरोकार उनका,
आज नहीं तो कल खुदा मिल ही जाएगा उन्हें,
यही सोचकर सब सह लेता हूँ मैं।

बेशक पत्थरों को है गुरेज पत्थर होने से
होना ऐतबार का बेहतर है ना होने से
सच्चाई से हो न जाऊँ रूबरू कहीं
यही सोचकर मुँह फेर लेता हूँ मैं।

परत दर परत मुख़्तलिफ़ चेहरों के दौर में,
बदलती वफाओं के बड़े शोर में,
जब भी कोई मासूम सा चेहरा दिख जाए,
तो मुस्कुरा लेता हूँ मैं।

अपना देश

देखो चमन का उजला दामन दागदार कर जाते हैं
देखो गद्दारों को,मिट्टी बेच यहाँ इतराते हैं।

कुछ सिक्कों की खनक पे अपने इमां से फिर जाते हैं,
देश के दुश्मन इनके घर में सुबह शाम टिक जाते है।

इनको कहाँ पता है माँ के गौरव का क्या मोल है,
इनकी नियत,इनकी दानत,गिरगिट जैसी खोल है।

अपना देश है सोने जैसा,सोने से भी बेहतर है,
इसके कण-कण हमको प्यारे, प्यारे इसके मंजर हैं।

हमको यहाँ पे जीना-मरना,यही हमारी शान है,
इस मिट्टी से प्यार हमें है,इस पर हम कुर्बान हैं।

अपनी मां की लाज बचाने, अपनी जान लड़ा देंगे
मक्कारों की सात पुश्त को,अच्छा सबक सिखा देंगे।

हमने सबको प्यार दिया है,अच्छा सा व्यवहार दिया है
जो भी दुश्मन आँख दिखाए,दोहरे बल से वार किया है।

तुलसी,सूर,रहीम की वाणी,हमने दिल से बोली है,
समर भूमि में आल्हा गाथा हमने फिर से खोली है।

बदलती वफाओं के दौर में

डॉ. गौरी त्रिपाठी

"जब भी शाम होती
एक डिबरी जल उठती"

जैसे बादलों के घटाटोप अंधेरे में अचानक कोई बिजली कौंध जाए, जैसे उदासी और ना-उम्मीदी के निराश क्षणों में मां की आत्मीय पुकार सुनाई दे जाय, जैसे महानगर के रेतीले अजनबियत में बचपन का कोई दोस्त मिल जाय, वैसे ही कवि श्री (डॉ.) आलोक कुमार चक्रवाल जी की कविताओं में आत्मीय स्मृतियों की अनेकानेक छवियां गाहे ब -गाहे अक्सर दिख जाया करती हैं। वैसे तो इनकी कविता का मुख्य सरोकार वर्तमान ही है लेकिन वर्तमान में बार-बार स्मृतियों की आवाजाही पाठक को न सिर्फ कविता से जोड़ती है, बल्कि कवि और कविता के सांस्कृतिक परिवेश का अनिवार्य हिस्सा बना लेती हैं, कुछ इस तरह कि पढ़ने वाले को यह नहीं लगता कि वह किसी अन्य कवि की कविता पढ़ रहा है, बल्कि यही लगता कि वह अपनी ही स्मृतियों को गुनगुना रहा है।

स्मृतियों की यह आवाजाही वर्तमान से पलायन नहीं है, बल्कि चुनौतियों का सामना करने के निमित्त शक्ति संचयन जैसा है। जब सामने किसी गहरी और डरावनी खाई को पार करने की चुनौती हो तो हमें थोड़ा पीछे जाकर लंबी दौड़ लगानी होती है।इतिहास को देखना इतिहास की ओर लौटना नहीं, इतिहास का वारिस होना होता है।इन अर्थों में ये कविताएं अतीत से वर्तमान का आत्मीय संवाद भी हैं।

अपनी कविता 'मुस्कुरा लेता हूँ मैं' लिखते हुए कवि ने एक मुहावरा रचा है। वह मुहावरा है- बदलती वफाओं के दौर में'। कविता में बिना किसी अतिरिक्त शोर- शराबे के चुपचाप दाखिल होती यह पंक्ति हमारे वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक जीवन की एक बहुत बड़ी सच्चाई का केंद्रीय वाक्य बन जाती है। कविता से निकल कर यह एक पंक्ति हमारे वर्तमान फलक का 'कीवर्ड' बन जाती है, जिसका अर्थ विस्तार आज शीर्ष से लेकर गांव की गलियों तक, कहीं भी देखा जा सकता है।

'मां और रोशनी' कविता में गुम्बद की ऊंचाई के साथ नींव के अदृश्य और अनपहचाने पत्थरों के संघर्ष को बार -बार उकेरने की जद्दोजिहद दिखाई देती है। जब कवि लिखता है कि-बड़ा प्यार था उससे मुझे / जब भी शाम होती / एक ढिबरी जल उठती / और मां मुझे अपने सीने से लगा लेती।" अक्सर हमें गढ़ने, रचनेऔर संवारने वाले हाथ हमारे दाय से वंचित रह जाये करते हैं।देखा जाय तो एक अति परिचित जीवन प्रसंग से यहां एक इतिहासदृष्टि पैदा की गई है। बिना अपनी संस्कृति से जुड़े न तो वर्तमान का कोई इतिहास लिखा जा सकता है, न मानवीय सौंदर्यबोध की कल्पना ही संभव है।

हमारे बचपन की किताबों में अक्सर परियाँ होती थीं। उन परियों की कहानियां होती थीं। आज हम इतने यथार्थग्रस्त हो चुके हैं कि अब वे झूठी कल्पना या गप्प मानकर हमारे पाठ्यक्रमों और सपनों से वहिष्कृत कर दी गयी हैं। अगर पानी न हो तो मिट्टी धूल और धुवें का गुबार या ढेर बनकर हमारी आंखों में भर जाएगी। कुछ भी न उग सकेगा उस मिट्टी में। ठीक उसी तरह कल्पना न ही तो हमें यथार्थ से शायद ही कुछ हासिल हो सके।तिकडमीऔर मतलबी लोगों के पास भविष्य को लेकर न कोई सपना होता है, न कोई स्मृति। कल्पनाओं से वंचित वे यथार्थ के क्रीतदास बनकर रह जाते हैं, और जैसा कि इस सम्पादकीय का शीर्षक ही है -बदलती वफाओं के दौर में। 'परियों का देश' कवि की स्मृति भर नही है, बल्कि कवि का विजन भी है। जैसे रैदास और कबीर का बेगमपुरा।

बसंत साव
की
कविताएँ

घर की चारदीवारी
गांव की सरहद
इतने भर से सिरजती है
उनकी अपनी निश्छल दुनिया
लेकिन खींच ले गई उन्हें बलात
उन्मादी भेड़ियों की भीड़
मूकदर्शक बनी रहीं
रखवाली की जिम्मेदार वर्दियां
नपुंसक वर्दियां
बहती रही रक्त की धार
अस्मतें होती रहीं तार-तार
सड़कों, खेतों में
लुटी हुई देहों का
निर्लज्ज नग्न प्रदर्शन
वीडियो बनाती रहीं
तमाशबीन आंखें
द्वापर के बाद
एक बार फिर कलंकित
हो गया मानवता का इतिहास
निष्ठुर हवाएं निगलती रहीं
दो कूकी कोयलों की कूक
अनुत्तरित होता रहा
आर्तनाद
अबकी बार नही बचा सका
कोई कृष्ण
भारी पड़ा
दुस्शासनों , दुर्योधनों का हुजूम
बहरे समय के कानों के लिए
निरर्थक सिद्ध होता रहा
अबकी बरस हम ऐसी दीवाली मनाएं...

कोई जन भूखा न रहे, ऐसी हो दीवाली,
चेहरे पर बिखरी हो मुस्कान, छाई हो खुशहाली।

ईर्ष्या और नफरत हम तज दें, प्रेम का दीप जलाएं,
अज्ञान, आडम्बर और कुरीतियाँ, सारे जहाँ से मिटाएं।
अबकी बरस हम सब मिलकर ऐसी दीवाली मनाएं...

प्लास्टिक का न करें प्रयोग, हम दृढ़ संकल्पित हो जाएं,
पटाखों को बिल्कुल न जलाएं, प्रदूषण न फैलाएं,
किसान न डूबने न पाएं कर्ज में, खेतों में फसल लहलहाएं,
चाहे जिस कारण से परिजन हों रूठे, उन्हें पुकार लगाएं।
अबकी बरस हम सब मिलजुलकर ऐसी दीवाली मनाएं...

सबके शुभ की हम करें कामना, सर्वहित की हो भावना,
दीन-दुखी के लिए हृदय में पनपे, सदैव ही सद्भावना।
जाति-पांति और धर्म का, हम न विद्वेष फैलाएं,
मानवता का परचम फैलाकर, नई इबारत लिख जाएं।
अबकी बरस हम सब मिलकर ऐसी दीवाली मनाएं...

मन में तरंग, मन में उमंग, किसी की न हो काली रात,
इस दीवाली में सबको मिले, खुशियों की सौगात।
दुख के बादल यदि आएं, वो झटपट ही छंट जाएं,
उनको भी खुशियाँ मिल जाएं, जिनके चेहरे हों मुरझाएं।
अबकी बरस हम सब मिलजुलकर ऐसी दीवाली मनाएं...

असत्य पर सत्य के जय का संदेश, देता यह त्योहार,
श्रीराम अयोध्या लौटे थे, असुर रावण का कर संहार।
घर-घर दीप जले घी के, सजे थे अनुपम वंदनवार,
इस दिन समुद्र मंथन से, लक्ष्मी ने लिया था अवतार।
सजती हैं बिजली की लड़ियाँ, बच्चे फुलझड़ियाँ चलाएं,
अंधकार को दूर भगाकर, जग को हम रोशन कर जाएं।
अबकी बरस हम सब मिलजुलकर ऐसी दीवाली मनाएं...

प्रीति शर्मा “असीम”

की

कविताएँ

जिंदगी...... बड़ी

जिंदगी ......बड़ी बेरहमी से सच दिखती है।
कितना भी.... बहलाते रहे खुद को।
ऐसा नहीं है...???
ऐसा हो नहीं सकता ...!!!!
जबकि ..... ऐसा ही था!!!?
साथ सच के बीते लम्हों की हर बात को
बड़ी खामोशी से बयां कर जाती है।

जिंदगी बड़ी बेरहमी से सच दिखती है।
जिंदगी सच को बड़ी बेरहमी से दिखती है।

झूठी उम्मीद को पाल-पाल कर।
लाख कोशिश करें कोई टूटी उम्मीदों को फिर से संभाल कर।
जिंदगी उम्मीद से भी उसकी उम्मीद छीन लेती है।

जिंदगी बड़ी बेरहमी से सच दिखती है।
जिंदगी सच को बड़ी बेरहमी से दिखती है।

अपना-अपना कहकर
जोड़ते रहे उमर भर छत और दीवारों को।
जिंदगी बड़ी बेरहमी से उन घरों के दरवाज़े गिरा कर निकल जाती हैं।
जिंदगी बड़ी बेरहमी से सच दिखती है।
जिंदगी सच को बड़ी बेरहमी से दिखती है।

मतलब तक जो मतलब रखते रहे।
मतलब से चले और मतलब को साथ लाते रहे।
वक्त बदलते ही जिंदगी लबों से जिक्र तक हटाती है।
जिंदगी वक्त बदल- बदल कर
जिंदगी को सच का वह पाठ पढ़ती है।
जान कर भी हम सच को अनदेखा करते है।
शायद ..इसी लिए सच को इस तरह से सामने लाती है।
जिंदगी बड़ी बेरहमी से सच दिखती है।
जिंदगी सच को बड़ी बेरहमी से दिखती है।

राकेश कुमार 'धनराज'
की
कविताएँ

गुमनाम जिंदगी
(इतिहास को पढ़ते हुये)

इतिहास है जैसे एक रेत का समंदर
मृग-मरीचिका सी भूल-भुलैया
जहां जिंदगी और मौत की बीच की पूरी जद्दोजहद
कैद हैं हर एक समयान्तराल में
या किसी फाइल या ग्रन्थों के बीच दबा पड़ा हैं अब भी ऐसे-जैसे
किसी समंदर के तलहठी में छिपा कोई ख़जाना।

खोजने पर जहां कहींभी मिले आदमी का निशान
वहीं उसके आस-पास रहा होगा
उसका कुनबा उसका गाँव उसका संसार
जिसकी जुगत में करता रहा होगा वह
दिन-रात हाड़-तोड़ मेहनत
किसी के खेतों घरों या अन्य ठिकानों पर काम।

वहीं उसके आस-पास ही रहा होगा
कोई एक राजाया महाराजा
जगीरदार जमींदार ठीकेदार इजारेदार
जोतदार कस्तकार रैयत या फिर कोईएक किसान
जिसके खेतो घरों या उसके अन्य ठिकानों पर काम कर
बमुश्किल से कमा लेता था वह
अपने परिवार के लिए
दो छटाँक अनाज।
ऐसे किसी आदमी का निशान बमुश्किल से मिलता हैं
किसी इतिहास की किताब में
सन 1770 से 1970 के दशक तक
कमोबेश कहा गया जिसे –
कुली कमिया कमारया बेठ-बेगार
बनिहार बंधुआ-मजदूरया ऐसाही कई अन्य उपनाम
जो जीता रहा अपनी गुमनाम ज़िंदगी
जिसका जिक्र कभी एक इंसा जैसा हुआ ही नहीं।

दसहरा का मेला

(फुटपाथी जिंदगी-बसर करने वाले लोगों के नाम)

मां-बेटी मेला घुमने नहीं आयीं हैं
जैसे आज सड़कों पर लोग आये हैं
पर आयीं हैं दो बड़े बोरो के साथ
बिखरे हुए बोतलों को समेटने।
पेट की आग रहने और पहनने की समस्या से बड़ी है।

सड़कों की पगडंडियों पर
रात-भर रेंगती हुई भीड़ (मेला) ने
इन्हें अपने सोने के ठिकानों से वंचित कर दिया है
पर माथे पर सिकन नहीं इनकी
होठों पर मुस्कान है।
दुर करेगी यही समस्या
पेट की आग (भूख)
और उनकी अपनी कुछ तंगहाल परिस्थितियों को
देर रात या यों कहें कि पूरी-पूरी रात
व्यस्त रहेंगी ये मां-बेटी
उसी जुगत में।
मां-बेटी मेला घुमने नहीं आयीं हैं
जैसे आज सड़कों पर लोग आये हैं।

मनजीत सिंहआप जीवित या मृत

एक कविता,
और हम दोनों
मैं और मेरी मोहब्बत
खामोशी में उदास है
कहते हैं
मैं आज के बाद
आपकी चुप्पी स्वीकार नहीं करूंगा
मैं अपनी चुप्पी स्वीकार नहीं करूंगा
मेरा जीवन आपके चरणों में बर्बाद हो गया है
मैं आपका चिंतन करता हूं..
और मैं आपसे सुनता हूं..
और तुम बोलते नहीं..
मेरी खंडहर चीख
तुम्हारे हाथों में है
अपने होंठ को हिलाओ
मैं बोलता हूं
ताकि मैं बोल सकूं
मैं चिल्लाता हूं
ताकि मैं चिल्ला सकूं
मेरी जीभ अभी भी सूली पर चढ़ी हुई है
शब्दों के बीच
जीना शर्म की बात है
सड़कों पर कैद
एक मूर्ति बने रहना
कितने शर्म की बात है
और चट्टानें बता रही हैं
कि आपके नौकरों ने लंबे समय से क्या खोया है
सारी प्रार्थनाएं आप में एकजुट हो गईं
और आप दुनिया के लिए एक तीर्थस्थल बन गए
मुझे बताएं
कि मृतकों की चुप्पी क्या बता सकती है
तुम्हारे दिमाग में क्या है?
मुझे बताओ..
जमाना बीत गया..
और राजा झुक गए..
और सिंहासन गिर गए
और मैं कैद हो गया...
तुम्हारी खामोशी मेरे चेहरे पर
जीवन के लिए एक खंडहर हैं
वही खंडहर हैं इस दुनिया में आपका चेहरा।
क्या आप मर चुके हैं...
या जीवित हैं?
लेकिन आप कुछ ऐसे हैं
जो मैं नहीं जानता
आप न तो जीवित हैं...
और न ही मृत.....।

जनाब ये जिंदगी है

जीलो आज और कल हरदम बेझिझक
जनाब हमें जिंदगी बार-बार नहीं मिलेगी
जीवन में ढेर सारे ग़म और कहीं कहीं खुशी है जनाब

गम लेकर बैठे तो तुम हमेशा उदास रहो,
खूबसूरत है जनाब ज़िन्दगी हर पल खुश रहो
जिंदगी भर हर पल तुम्हें याद रहे ऐसी जियो
गम के पल याद हो या ना हो खुशी के पल जरूर करो याद
पर खुशियों और ग़म के हर पल हमेशा याद रहेंगे जनाब

जात-पात धार्मिक भेदभाव को खत्म करो,
घुल मिल कर चलते रहो भाईचारा कायम कर
आपस में लड़ते रहोगे कब तक यूं ही हर रोज़
प्रेम से रहना सीखो मोहब्बत का पाठ पढ़ाया करो

नफरत की जंजीर को तोड़कर आगे बढ़ते हुए
जीवन मे आनंद लेना सीखो आगे बढ़ते हुए
साम्प्रदायिक दुश्मन को पछाड़ तो सबको आगे बढ़ते हुए
भाईचारे की तरह रहना सीखो आगे बढ़ते हुए
जिंदगी नहीं मिलेगी दोबारा यूं व्यर्थ ना गंवाओ
गमों को भूलकर उदासियों को भूलकर खुशियां लाओं
खुशहाली में रहना सीखो मिल जुल कर रहो
गमों को पछाड़ कर और खुशी से जीना सीखो जनाब

दीपावली बम्फर गिफ्ट

श्यामल बिहारी महतो

'आखिर उसने जो कहा, कर ही डाला'

मंच,मंच पर हमने नेताओं का रूप बदलते, पार्टी बदलते औरनीतिबदलते भी देखा है। लेकिन यह आदमी तो जरा भी नहीं बदला। लोग क्या कहेंगे, लोग क्या सोचेंगे - एक पल भी नहीं सोचा । अपने भाव, अपनी विचारों को खुला रूप देते, सार्वजनिक करते हुए उन्हें ज़रा भी संकोच नहीं हुआ । ज़रा भी सोचा -विचारा नहीं उसने । डंके की चोट पर, एक दम से खुला-खुला ! आओ बुढ़वा खेलें होली । अपने रंग हजार । जीवन एक बार ही मिलता है- बार-बार नहीं । जितना हो सके, हंसी -खुशी से जी लो । यह दुनिया एक मुसाफिरखाना है । एक सराय है । रैन बसेरा । जीने के लिए जो सांसें मिली है, उसे पूरा पूरा जी लो । यह जीवन भी एक सराय ही है । यहां कोई अपना कोई पराया नहीं । पैसा हैं तो प्यार है, पावर है तो सब हैं, पास-पास ! क्योंकि पैसा है तो प्रेम है । पैसा नहीं तो सब तरफ विरानी, उजाड़ ! मलाल ! ऐसे जीवन से अच्छा है,प्रेम के साथदो पल जी लो-जी उठोगे"

यह किसी महान संत का विचार या किसी दार्शनिक की कही बातें नहीं थी । बल्कि अपने ही गांव के शंभू काका का कथन था।

वह एक बुजुर्ग सम्मेलन था। खुला मंच था । हर किसी को अपनी बात रखने की खुली छूट दी गई थी । और कहने वाले भी कहने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ रहे थे। किसी ने जीवन की तरक्की में आई रूकावटों का रोना रोया, कोई पेंशन लागू न होने पर रूदन विलाप किया तो कोई मंहगाई पर भस्म कर देने वाली विचारों से सरकार को श्रद्धांजलि देकर उत्तर गया । लेकिन शंभूवा काका एक दम निराले निकले। उसकी एक एक बात निराली थी। बातों से लगता जैसे कोई युवा किसी वार्षिक सम्मेलन में अपने जीवन के सपनों को सार्वजनिक कर रहा हो "सोचता हूं फिर सांघाबिहा(दूबारा शादी) कर लूं "कह लोगों को चौंकाया था । उसने कहना जारी रखा " काफी दिन हो गए शादी किए । जब हमारी शादी हुई थी, बाराती पैदल और दुल्हा गरूगाडी (बैलगाड़ी) पर होता । तब तिलक-दहेज नहीं होता था, दुल्हन ही दहेज है,कहाजाता था । पहले वरमाला भी नहीं होता, दुल्हे का द्वार लगी होती थी । शादी के पहले लड़का लड़की को देख नहीं पाता था। अब वरमाला के साथ ही लड़के को लड़की सौंप दी जाती है "देखा- देखी कर लो, संग संग नाच लो, फोटो सोटोखिंचवा लो "यह देख मेरा भी जिया ललचा उठा है । और इसी के साथ फिर सांघा करने को, मेरा मन मचलने लगा है । पहले बेरोजगार था, एक साइकिल और एक गाय तिलक दहेज के रूप में लड़की के साथ भेज दिया गया था । अब रोज़गार में हूं । नौकरी है, अच्छी खासी सेलरी है, घर है, गाड़ी है, बैंक बैलेंस है, यार दोस्तों के बीच अच्छी पकड़ है, किसी चीज की कोई कमी नहीं है। बस रात को उल्लू की तरह जागता रहता हूं । पहली वाली तो बेवफा निकली,लोक छोड़ परलोक में जा बसी । उसकी याद में आंसू बहाता रहता हूं। मुझे रोता देख एक दिन उसने आकर कहा

"मेरी याद में कब तक आंसू बहाते रहोगे, दूसरी कर लो , तुम्हें तकलीफ़ होती होगी । मैं मान गया । अब मन फिर बाप बनने को उकसा रहा है । तिलक दहेज नहीं चाहिए, सिर्फ एक जोड़ी कपड़े में लड़की विदा कर दो..!" वह एक पल को रूका था । सभा स्थल में खुसरफुसर होने लगी थी " किस सनकी पागल को माइक थमा दिया गया है,जो मन में आ रहा है, बके जा रहा है..!"

"कल और आज का फर्क बता रहा है..!" कोई बोल उठा।

"हमें तो लग रहा है,यह सभा को संबोधित नहीं, अपनी दूसरी शादी का प्लान बता रहा है..!"

"पर बोल तो अच्छा रहा है..!" उस पर लोग बोलने शुरू कर दिए थे।

पर शंभूवा काका का रेडियो बंद नहीं हुआ था । विविध भारती की तरह उसने खुद को चालू रखा " बुजुर्गों ने भी फ़रमाया है कि यह दुनिया एक सराय है। एक मुसाफिर खाना है। जब तक जीवन है जिते ही जाना है । यही नहीं,लोगों को बीच बीच में शादी-बिहा करते रहना चाहिए, जैसे पहले के बुढ़- बुजुर्ग किया करते थे और जैसे आज के नेता लोग बीच बीच में पार्टी बदलते रहते हैं और लड़कियां दोस्त ! फिर हम पीछे क्यों रहें? आखिर उम्र ही क्या हुई है मेरी ! पचपन का हूं पर दिल तो बचपन का है, अच्छी खासी सेलरी है और क्या चाहिए.आज की लड़कियों को ? पैसे वाला हो तो आज की लड़कियां बुढ़ा-सुढा, काला- गोरा और ठिगना भी नहीं देखती और सीधे हां कर झपट लेती है - जैसे बाज़ कबूतरों पर झपटता हैं..!"

"कर लो ! कर लो ! " कुछ ने उकसाने वाली आवाज लगाई।

"तशेड़ी, नशेड़ी,गंजेड़ी, चार पांच लाख तिलक पा रहा है..!" शंभूवा काका कहते रहे " माना कि वे कुंवारे हैं, अरे,तो हमें भी कुंवारे समझ लो न,घंटा भी फर्क नहीं पड़ेगा। बोलो, कोई मेरा दूबाराबिहा करवा सकते हैं, कोई दूर द्राष्टा ! कोई महानुभाव है ! बिहा सिर्फ मेरे साथ होगा, हमारे घर परिवार के साथ नहीं । जीवन भर का साथ मैं दूंगा। हमारे घर परिवार से उसका कोई लेना देना नहीं रहेगा । परिवार का किसी तरह का भार उस पर पड़ने नहीं दूंगा। खाना भी उसे बनाना नहीं पड़ेगा । बर्तन भी मांजने नहीं पड़ेंगे । लेकिन लड़की किसी जाति की नहीं होनी चाहिए - बस सिर्फ लड़की होनी चाहिए। वह फेसबुक,वाटशप, ट्विटर और इंस्टाग्राम वगैरह में सिर्फ चेटिंग करने का काम करेगी, हमेशा ऑनलाइन रहेगी और ऑनलाइन खाना मंगवा कर मुझे खिलाएगी और खुद भी खाएगी । सप्ताह में एक दिन हम किसी पार्क में घूमने जायेंगे, फोटो शूट करेंगे और फिर किसी दिन किसी नदी में नहाते, किसी झरने के नीचे अपनी कोमल देह को सहलाते-नहलाते वो फोटो शूट करेंगी..! फिर उसे फेसबुक पर अपलोड़ करेंगी । इंस्टाग्राम में चेपेंगीं और हर साल हम शादी सालगिरहमनायेंगे,जो अभी तक हमने पहली के साथ नहीं मनाए थे..! क्या कहा आपने ? पहली शादी के बारे बताऊं, और बेटा-बेटी के बारे भी बताऊं, ठीक है तो सुनिए..

चालीस साल पहले बिना तिलक दहेज की मेरी शादी हुई थी। तब मेरी उम्र यही कोई बारह साल की होगी, और हाई स्कूल तेलो में वर्ग आठ में पढ़ता था। मूंछ दाढ़ी अभी निकली नहीं थी और हाथ में मोबाइल नहीं कॉपी किताबें होती थी। आज तो पैदा होते ही बच्चों के हाथ में मोबाइल आ जाता है और कितने तो मोबाइल के साथ ही पेट से निकल आते हैं जैसे महाभारत का कर्ण कवच कुंडल पहने पैदा हुआ था । हमारे भी तीन बेटे पैदा हुए। जैसे किसी युग में तीन भगवान पैदा हुए थे, ब्रह्मा,बिष्णु और महेश ! तब से कइयों युग गुजर गये। लेकिन अब धरती पर भगवानों ने पैदा होना बंद कर दिया। अब वे सिर्फ स्वर्ग और नरक का काम देखते हैं । हालांकि हमारे तीनों बेटे बड़ी सरलता से पैदा हुए। किसी ने हस्पताल का मुंह नहीं देखा और न आज के बच्चों की तरह किसी हस्पताल का नाम उनके नामों के साथ जुड़ा ! पर सभी के साथ कुसराइन (गांव में बच्चा पैदा कराने वाली चमारिन) नाम जरूर जुड़ा हुआ था । अपने लालन पालन में भी उन तीनों ने कोई मुश्किल पैदा होने नहीं दी और तीनों जर्मन सेफर्ड की तरह पले -बढ़े ! बड़े हुए तो, एक एक कर हमने तीनों की शादी कर दी, तब भी वो नहीं बदले,तब भी वो तीनों जर्मन सेफर्ड की तरह आज्ञाकारी बने रहे । लेकिन मेरे नहीं - अपनी-अपनी पत्नियों के ! तभी से उनकी सोच बदली थीं - हमारे प्रति। अपने बाप के प्रति। बाप के जीवन और ज़िन्दगी के प्रति। साल भर पहले की बात है। छः माह पहले पत्नी मर चुकी थी । बाहर कड़ाके की ठंड पड़ रही थी । मैं अपने कमरे में कंबल ओढ़े गठरी बने बैठा हुआ था । तभी सुबह आंगन में आग के अलाव को घेरे तीनों जर्मन सेफर्ड बेटों के बीच गुफ्तगू हो रही थी। शुरुआत बड़े ने की । कह रहा था " रिटायर होने के पहले अगर बाप किसी कारण वश मर जाता है, तो बाजार चौक की वो दस डिसमिल वाली जमीन मैं लूंगा। उस पर मैं एक शानदार " शंभू मार्केट " प्लेस बनाऊंगा और सभी किराए पर लगा दूंगा। यही मेरा रोजी रोजगार होगा ..।"

"नहीं, नहीं, ऐसा नहीं होगा..।" मांझिल ने एतराज जताया " उसमें मेरा भी हिस्सा होगा। बाप के मरने के बाद मिलने वाले सारे पैसे हम दोनों बांट लेंगे ..।"

"आप दोनों तो बड़े मतलबी निकले। जमीन में दोनों का हिस्सा, रूपए भी दोनों बांट लेंगे और मैं क्या बाबा का घंटा बजाऊंगा। मैं क्या पेड़ की खोंढर से पैदा हुआ हूं !" छोटकाछटाक भर उछल पड़ा था।

"अरे छोटे, नाराज़ काहे होते हो। तुम्हारे लिए नौकरी तो हम दोनों छोड़ ही रहे हैं। तुम मज़े से नौकरी करना..। "

"नहीं, नहीं,भले पैसे मत देना, लेकिन मार्केट में दो कमरा मुझे भी चाहिए..!"

"ठीक है, मंजूर..।" बड़ा बोला।

"ठीक है ..। " ,मंझिला भी सहमत।

"तो फिर ठीक है,तब मुझे एतराज नहीं। "

तीनों ने मेरा उसी दिन तेरहवीं पार कर दिया।

"आज के श्रवण !" भीड़ से किसी ने कहा।

"तभी मैंने निश्चय कर लिया, जर्मन सेफर्ड बेटों की सोंच और उनके हसीन सपने पर सुतली बम लगाने का...! " शंभूवा काका कहते चले गए " काम पर मैंने अपना और बेटों के प्लान के बारे अपने कुछ खाश दोस्तों को बताए। कुछ ने मजाक में लिया और कुछ ने बेहद गंभीरता से।

"गजब की कुंठित चाहत, बाप अभी मरा नहीं और घर में जलाने के समान आ गये ..!" एक साथी ने कहा

"आज कोई अपना नहीं,सबका सपना मनी -मनी !" दूसरा बोला।

"शंभूदा, जिंदगी तो वही है, जो अपनी मर्ज़ी से जिया जाए, कौन क्या कहता है, क्या सोचता है,कान देने की जरूरत नहीं..!" तीसरे ने जीवन की लोजिक बताया।

उस दिन के बाद से ही मैंने रातों को सोना कम कर दिया और जागना शुरू कर दिया। कहीं ऐसा न हो जिस छत के नीचे की कड़ी से बेटों के लिए कभी झूले लगा दिए करते थे, क्या पता किसी दिन उसी कड़ी से बेटे बकरे की भांति मुझे टांग दें ..!" शंभूवा काका की बातों ने एक समा सा हो बांध दिया था। कहिए तो कुछ कुछ सहमा सा दिया था । जो लोग शुरू में उनकी बातों से उकता कर जाने को उठे थे, पुनः अपनी जगह पर दिल थाम कर बैठ गए थे। शाम होनी अभी बाकी थी। उनका भी और उस सभा की भी।

जीवन की ढलान पर शंभूवा काका के अंदर एक तुफान सा उठा था। समाज की गोष्ठी - बैठकों में जाते रहता था । उसने कहना जारी रखा "बहुत दिनों से मन में एक विचार बार बार आ रहा था। तीनों बेटा पुतोहू को एक बड़ा सा दीपावलीबम्फरगिफ्ट दूं। लेकिन वैसा गिफ्ट अभी तक कहीं मिला नहीं था।उस दिन समाज की मीटिंग से शाम को रामगढ़ से घर लौट रहा था। गोला चौक में दो स्त्री - पुरुष के बग़ल में एक लड़की गाड़ी के इंतजार में खड़ी थी। पता चला पेट्रोलियम पदार्थों के मूल्य वृद्धि के विरोध में सवारी गाड़ियां दिन भर रोड़ पर नहीं चली। और शाम हो चली थी। पर गाड़ियों का अब भी पता नहीं था। तीनों परेशान दिखे। मैंने गाड़ी रोक दी और बाहर निकल आया। पूछा - " क्या बात है..?"

"हमें बहादुरपुर जाना है और कोई गाड़ी मिल नहीं रही है..।" लड़की ने बताया।

"मैं उधर ही जा रहा हूं, फुसरो, चाहो तो मेरे साथ आप लोग चल सकते हैं।"

"डेढ़ दो घंटे से खड़े हैं, एक भी गाड़ी नहीं आई..!" स्त्री ने आदमी की ओर देखा।

"और रूकना ठीक नहीं है..!" आदमी का मुंह धीरे से खुला।

"मां, आओ, इन्हीं के साथ चलते हैं..!" लड़की बोली और गाड़ी के बग़ल में आकर खड़ी हो गई। मैंने गेट खोल दिए। वह आगे मेरे बगल की सीट पर आकर बैठ गई। मां बाप दोनों पीछे की सीट पर समा गये। मैंने गाड़ी आगे बढ़ा दी। पहली बार मैंने लड़की का अवलोकन किया। गौर से देखा। अंदर से महसूस किया। मासूम लगी। वह आगे देख रही थी। सूनी मांग !पर आंखों में सपनों की उड़ान बाकी !

लड़की विधवा थी और पेट से भी थी। कुदरत की करिश्मा कहिए या जीवन का संयोग। घंटा भर पहले मीटिंग में विधवा विवाह पर मेरे जोरदार भाषण को लोगों ने तालियों की गड़गड़ाहट से स्वागत किए थे। मैं कह रहा था " हर विधवा स्त्री को, एक और ज़िन्दगी जीने का अवसर मिलना चाहिए। एक ही जिन्दगी में उसका सब कुछ खत्म नहीं हो जाता..!" अपनी ही कही बातें याद आ रही थीं मुझे।

"आप क्या करते हैं..?" अचानक से वह पूछ बैठी।

"नौकरी..!"

"घर कहां हुआ..?"

"मुंगो गांव..!"

"पत्नी क्या करती है?"

"वह चल बसी, इस दुनिया में नहीं है..!"

वह चुप हो गई। एक बार उसने मुझे देखा और कुछ पल मूडी गड़ाए बैठी रही। शायद कुछ सोचने लगी थी। मेरे बारे, अपने बारे या फिर समय की विडंबना पर।

बहादुरपुर आ गया था। सामने विशाल शिव मंदिर खड़ीथी। बुढ़ा बाबा का एक और घर ! मैंने गाड़ी रोक दी और बाहर निकल आया। पूर्णिमा का चांद आसमान पर उग आया था। इक्का दुक्का लोग आ जा रहे थे। जैसे शाम को लोग टहल को निकले हों। सबकीअपनी धूनअपनी चाल !

"बाहर.आ जाओ.!" मैंने लड़की से कहा। वह बेधड़क गाड़ी से नीचे उतर आई। आगे बढ़ कर मैंने उसका हाथ थाम लिया। वह सहजता के साथ मेरे सामने खड़ी हो गई। निरखने सा भाव-मुंद्रा ! ऊपर-नीचे ताकने लगी।

उसकी कोमल हथेलियों को सहलाते हुए मैंने कहा " मेरे साथ, हमारे घर चलोगी? मैं भी जीवन में अकेला हूं,अब तुम भी अकेली हो गई हो। शायद इसी लिए जीवन के मोड़ पर किस्मत ने हम दोनों को मिलाया है। उम्र में भले बड़े हूं पर बूढ़ा नहीं हूं। आखिरी सांस तक साथ दूंगा। कभी किसी चीज की कमी होने नहीं दूंगा..!"

"मैं,.. मेरे पेट में बच्चा पल रहा है...!" वह हकलाई थी।

"सब कुछ देख, समझ कर ही मैंने यह प्रस्ताव रखा है " बच्चा, तुम्हारे नयनों का तारा होगा और मैं तुम दोनों का माली.- शंभू माली.. शंभू नाम है मेरा !"

"मैं फूलमती, फूलमतीमहतो.!" उसने मेरी आंखों में झांका। जहां उसे एक पूरा जीवन मंडल विराजमान नजर आया। तब उसने मां बाप की ओर देखा, हमें गाड़ी से उतरे देख वे दोनों भी उतर गए थे और अचंभित भाव पूर्ण नजरों से हम दोनों को देख रहे थे.."

"फिर क्या हुआ...?" भीड़ ने पूछा।

"क्या आप लड़की को साथ लेते आए..?"

"लड़की के माता पिता ने क्या कहा..?"

"तभी उसकी मां आगे बढ़ी थी ..!" सवालों के जवाब समेटते हुए शंभूवा काका ने कहा -" पहले तो उसने बेटी के सर पे हाथ रखा और मंदिर के अंदर चली गई। लौटी तो उसके हाथ में कागज से लिपटी सिन्दुर की पुड़िया थी। पुड़िया उसने मेरे हाथ पर रख दी और बेटी से कहा -" यह सिन्दुर मांग में भर लो बेटी ! बुढ़ा बाबाघर का है, सदा जगमगाती रहेंगी..!"

"शादी के छः माह बाद ही तुम्हारी किस्मत में छेद हो गई। अब उसी किस्मत ने तुम्हें एक मौका फिर दिया है, जाओ बेटी, इस फ़रिश्ते के साथ सदा खुश रहना !" बाप ने फूलमती के सर पर हाथ रख दिया था..!

"घर में स्वागत हुआ या आफ़त आई...!" किसी ने बीच में फिर पूछ बैठा।

"धमाका हुआ ! जर्मन सेफर्ड बेटों के सपनों पर सुतली बम फट गया ..!" शंभूवा काका ने जैसे जीत की डफ़ली बजाते कहा था " बहादुरपुर से छूटे तो हम सीधे बोकारोमॉल में जा घुसे। फूलमती की वेश भूषा भी तो बदलनी थी। नये परिधानों में वह सचमुच की फूलकुमारी लग रही थी। खुद का नया रूप देख खुद से शर्मा गई और देर तक मुझसे लिपटी रही। रास्ते में हमने एक होटल में खाना खाये। घर पहुंचे तो रात काफी हो चुकी थी और सभी अपने अपने कमरे में गहरी नींद सो रहे थे। हमने किसी को जगाया नहीं और हमेशा की तरह किसी ने उठ कर हमसे पूछा नहीं कि " खा कर आ रहे हो, या खाना भी है..!" हमेशा की तरह हमने अपने पास की चाबी का इस्तेमाल किया। पहले गाड़ी अंदर की फिर फूलमती को बाहों में लिए अंदर अपने कमरे में समा गए। लगा बहुत बड़ी जंग जीतकर लौटा हूं। सोए तो दोनों यही दुआ कर रहे थे कि इस रात की फिर सुबह न हो। लेकिन फिर सूरज उगा, फिर सुबह हुई, और ऐसी सुबह हुई, कि बहुतों के सालों साल की नींद उड़ा दी। कौवे छत की मुंडेर से उड़ गए और मैनों ने डाल बदलने से मना कर दिया।

सुबह सबसे पहले फूलमती ही उठी। शौचालय से निवृत्त होकर मुझे उठाया। आंगन में जर्मन सेफर्ड पुत्रों को अपनी पत्नियों के संग खड़े पाया। बड़ा पुत्र दहकते अंगारों सा आंख किए आगे बढ़ आया " पापा,यह आपने क्या कहर बरपाया ? बुढ़ापे में दूसरी शादी कर लाया..!"

बड़े का शह पाकर मांझिल भी बढ़ आया -

"लोग क्या कहेंगे ज़रा भी न सोचा , खुद को जवान समझा, क्या है यह लोचा..?"

तभी छोटा था फुसफुसाया " खाने को बप्पा को कोई नहीं पूछता था। आज बप्पा ने हम सबके खाने में जहर मिलाया..!"

"कल तक बप्पा को कोई पूछ नहीं रहा था। आज बप्पा का किसी का साथ पाना बहुत अखर रहा है। जाओ तीनों मिल बना लो शंभू मार्केट। लगा दो किराए पर, हम चले अपनी राह..!" कह साबुन तौलिया लिए मैं बॉथरूम में जा घुसा और फूलमतीमुर्झाए सूरजमुखी पौधों को पानी देने लगी..! " .." शाबाश काका..!" भीड़ से कोई बोल उठा।

"शंभूवा काका की जय हो "

शंभूवा काका के जीवन का रंग देखकर भीड़ में सभी "
हो,हो,हो,..!"कर सब हंसने लगे।

धूप के रेशे मुलायम हैं

महेश कुमार केशरी

"बाबा मैं, तुम्हारी तरह ऐसे ही मजबूत कट्टे बनाऊँगा। जैसे तुम बनाते हो। जैसे तुम्हारे बनाये कट्टे फायर करते समय नहीं फटते। ठीक ऐसे ही कट्टे मैं भी बनाऊँगा बाबा। बिल्कुल तुम्हारी तरह तुम्हारे बाद !

"करमजीत कार के स्टेयरिंग वाले पाईप को काटकर तराशते हुए अपने बाप गुलाब सिंह की तरफ देखते हुए बोला।

हाँलाकि, गुलाब सिंह, करमजीत के सामने ही कट्टे बनाने का काम करता है। लेकिन, उसका लड़का बड़ा होकर कट्टे बनायेगा। उसके बाद उसकी तरह। ये बात सुनकर गुलाब सिंह के कान खड़े हो गये थें। उसके सीने में लगा जैसे किसी ने बर्छा मार दिया हो । ये बात इस छोटे से मात्र तेरह साल के लड़के के मुँह से सुनकर उसे बेहद अचरज हुआ था। लेकिन वो सोच रहा था कि आखिर करमजीत भी कट्टा बनायेगा। उसको भी पुलिस दबिश देकर खोजेगी ? उसे भी जँगलों में महीनों रहकर रात बीतानी पड़ेगी। पाईप मोड़ते - मोड़ते उसके हाथ वहीं कहीं जम गये। कबसे कट्टा बना रहा है , वो। यादों के धुँधलके में कहीं वो गहरे उतरता जाता है। पैतन पुर गाँव जहाँ उसका जन्म हुआ था। बचपन से ही वो इस माहौल में पला - बढ़ा। उसके पिताजी भी कट्टे ही बनाते थे। कोई तीन चार सौ लोग रहते हैं। उस गाँव में। सबका यही व्यवसाय है। कट्टा बनाने का। लीगल तरीके से यहाँ कुछ नहीं होता। सब कुछ पर्दे के पीछे से होता है। बहुत कम मेहनत और बहुत कम लागत में बन जाता है , कट्टा। फिर , इसे बाहर ले जाकर बेचने का भी टेंशन नहीं है। दूर - दराज के अपराधी किस्म के लोग अपनी सुविधा के अनुसार उससे कट्टे खरीदकर ले जाते हैं।

खासकर , छोटे - मोटे दूर - दराज के इलाकों में इसकी बहुत डिमाँड रहती है। और चुनाव के समय तो इन देशी कट्टों की माँग बहुत बढ़ जाती है। नेता लोग भी अपने गुर्गों की मदद से यहाँ इस गाँव से माल ले जाते हैं। चुनावों में दबिश देने के लिये। बूथ कैप्चरिंग के लिये। लेकिन, पैतनपुर से इन नेताओं का केवल चुनाव तक ही नाता रहता है। चुनाव के बाद वो इधर झाँकते भी नहीं। इस कट्टे वाले धँधे में एक तो युवाओं में खासा पैशन दिखता है। इतना पैशन की, पूछो ही मत ? एक किशोरावस्था की बनैली क्रूरता उनके आँखों में दिखाई देती है । जिसे देखकर वो डर जाता है। एक ऐसा पैशन जिसे उसने करमजीत के आँखों में अभी- अभी देखा है।

एक ऐसा पैशन जिसका इस्तेमाल वहाँ के नेता इन युवाओं और किशोरों का कार के स्टेयरिंग वाले पाईप की तरह कट्टा बनाने में करते हैं। हाथ युवाओं का जलता है। और ये नेता युवाओं को एक सपना दिखाकर उसमें अपना हाथ सेंकते हैं। एक क्रूर हिंसक सपना। ऐसा सपना जो कभी पूरा नहीं हो सकता। नशाखोरी और हिंसा ने इस पैतन पुर को अपनी गिरफ्त में ऐसे कसा है। जैसे अजगर, आदमी को अपने जबड़े में कसता है। गुलाब सिंह को लगा कि उसके बेटे करमजीत को भी कोई बहका रहा है। कोई ऐसा सब्ज-बाग दिखा रहा है। जिसमें करमजीत कल को उस क्षेत्र का कोई रसूखदार आदमी बन जायेगा। या कोई भाई वाई टाइप का आदमी ! लेकिन, करमजीत एक कट्टे बनाने वाले का बेटा है। उसको कोई कैसे सब्ज- बाग दिखा सकता है ? लेकिन हो भी तो सकता है। आखिर, छोटे - छोटे बच्चे ही तो अपराधियों के सॉफ्ट- टारगेट होते हैं। बिल्कुल कार के पाईप की तरह। जिनसे कट्टा बनता है। लचीले और नाजुक !

उन्हें केवल तपाना भर होता है। फिर , अपने हथौड़े से ठोंक- पीटकर मन चाहा आकार ले लो। आखिर जिन राज्यों में शराब बैन है। वहाँ के अपराधी , बच्चों का सहारा लेकर ही तो शराब एक जगह से दूसरे जगह तस्करी करते हैं। पुराना माड्यूल बदल गया। आज कल पुलिस भी तो इन तस्करों और अपराधियों की सारी टेक्नीक समझ गयी है। फिर थोड़े से पैसों के लालच में ये युवा भटक जाते हैं। ये वही समय होता है । जब ये बच्चे हाथ से बेहाथ हो जाते हैं। आज कल जो स्मगलरी होती है। उसमें इन युवाओं को ही तो टारगेट किया जाता है। नशा करने वाला भी युवा। नशा बेचने और खरीदने वाले भी युवा। फिर आज कल तो बेब सीरीज का जमाना है। उसने नेट-फिलीक्स पर कुछ बेब - सीरीज देखीं हैं। गालियों से नहाते संवाद। फूहड़ पटकथा और घटिया संवाद। बात- बात में गाली - गलौज। छोटी - छोटी बात पर ठाँय से पिस्तौल चलती है। और आदमी ढ़ेर हो जाता है । बँदूक का साम्राज्य। हर तरफ दिखाई देता है। फिर इस देश में ऐसी फिल्में क्यों बन रहीं हैं। और , अगर बन रहीं हैं तो , फिर सेंसर बोर्ड का अब क्या काम बचा है ? पता नहीं चलता। फिल्मों में अब संवाद और नायक केवल बँदूक से बात करता है। और उसकी बात सुनी भी जा रही है। ठेका नहीं मिलता है। तो बँदूक चल जाती है। सामाजिक दायरा कितना विकृत होकर सामने आ रहा है। इन फिल्मों में। एक ही औरत के तीन - तीन लोगों से संबंध हैं। ससुर से भी , पति से भी , और बेटे से भी ! सामाजिक संबंधो की बखिया उधेड़ती आज की ऐसी बेब सीरीजें युवाओं के अंदर एक जहर भर रहीं हैं । फिर आज का युवा भी तो इन चीजों से बहुत इंस्पायर हो रहा है। और, इन बेब- सीरीजों में सबसे बड़ी चीज जो दिखाई जा रही है। उसमें इन दबंगों को राजनीतिक तौर पर भी सत्ता का संरक्षण प्राप्त है।

बात - बात में गाली- गलौज । छोटे - बड़े को तरजीह ना देना। समाज का पूरा - ताना बाना बिखर गया है। इन बेब सीरीजों से। इन बेब - सीरीजों को देखकर ही तो युवा ड्रग्स ले रहें हैं। जैसे किसी फिल्म में टुन्ना भ ईया को ड्रग्स लेते दिखाया गया है। और सबसे ज्यादा खराब बात इन बेब- सीरीजों में नायक का खलनायक हो जाना है। किसी भी राह चलती लड़की का दुप्पटा खींच लिया जाना। उसे सरेआम छेड़ा जाना। उसका सामूहिक बलात्कार। और नायक के रूप मे आज का युवा अपने आपको टुन्ना की जगह पाता है। बहुत खुश है। आज का युवा अपने आपको उस खलनायक के रूप में देखकर। उसे टुन्ना भ ईया की तरह का बोस बनना है। पूरा जिला उसका है।

उसके पास पावर है। तो वो सब-कुछ हासिल कर सकता है। यहाँ नायक किसी अपने पर भी विश्वास नहीं करता। बस उसे गद्दी चाहिए। चाहे जैसे मिले। बाप को मारकर भी।

गिलास के गिरने की आवाज से गुलाब सिंह की तँद्रा टूट ग ई । उसने हो - हो की आवाज दी। लेकिन बिल्ली नहीं भागी। ढीठ की तरह खड़ी है , अब भी खिड़की पर । वो उठकर खिड़की तक गया। इस बार बिल्ली भाग गई । सामने गुरविंदर को देखकर वो चौंक जाता है। वो किसी लड़के से खड़ा होकर हँस - हँस कर बातें कर रहा है। उसके हाथ में एक पैकेट है। काले रँग की पालीथीन। उसका दिल फिर से बैठने लगता है। गुरविंदर , उसके सगे भाई लखविंदर का बेटा है। वो पिछले साल जेल से होकर आया है। ड्रग्स बेचने के आरोप में। उस पर खालीस्तानी होने का आरोप भी लगा था। पाकिस्तानियों और आतंकवादियों से उसके संबंध हैं। ऐसी चर्चा मुहल्ले में हो रही थी । पुलिस कह रही थी। बाहर देश से ये जो अफीम , कोकिन और हीरोईन आती है। वो हमारे दुश्मन मुल्क पाकिस्तान से आती है । ठीक है। ये बात भी समझ आती है। गुविंदर के साथ एक और लड़का पकड़या था। वो ,माजीद था। एक पाकिस्तनी लड़का। पेशावर से था

शायद , माजीद। जैसा कि गुरविंदर बता रहा था। उम्र कोई बीस-बाईस साल थी। उसका बाप कसाई था , रहमत शेख । दो - दो शादियाँ कर रखीं थी उसके बाप ने। वो उसकी सगी माँ को बहुत मारता - पीटता था । उसके आठ - आठ भाई बहन थें। किसी तरह उसने सातवीं पास की। उसका बाप पाकिस्तान में एक बार इमरान खान की तहरीर सुनने गया था। फिर उसी रैली में गोली लगने के कारण उसका बाप मर गया था । एक तो छोटी उम्र। फिर , आठ - आठ लोगों की जिम्मेदारियाँ सिर पर । एक अकेला माजीद भला अकेले क्या-क्या करता ? लोग मँहगाई से उस देश में पहले ही बदहाल थें। साग - सब्जी खरीदने के पैसे तो पास में होते नहीं थें । गोश्त कौन खरीदता ? ऐसा नहीं था कि माजीद बेवकूफ़ था। वो अखबार पढ़ता था। चीजों को समझता था। उसने अखबारों में ही पढ़ा था। कि कुछ सालों पहले देश के पूर्व प्रधानमंत्री जिन पर भ्रष्टाचार के गंभीर मामले थें। वो देश छोड़कर अभी लंदन में रह रहा है। और अब अपने मुल्क में इमरान खान के अपदस्थ होते ही वापसी की तैयारी में है। चुनाव नजदीक आ रहें हैं , वहाँ । ऐसा तो उसके खुद के देश में भी हो रहा है। यहाँ के नामचीन भगौड़े बैंकों का पैसा लेकर लंदन , यू. के. , अमेरिका, यूरोप में बिजनेस को सेटल कर रहें हैं। आखिर जो दूसरे मुल्क में हो रहा है। वो तो उसके देश में भी हो रहा है। पड़ौसी देश का पूर्व भगोड़ा या देश निकाला प्रधानमंत्री सोने की थाली मे बैठकर मेवों का आनंद ले रहा है। वो जो एक भ्रष्टाचारी है । माजीद जैसे लाखों लोग जो मेहनत करते हैं। सरकार को टैक्स भरते हैं। उनके टैक्स के पैसों से ही ये सरकारें भ्रष्टाचार करती हैं। बड़ी - बड़ी गाड़ियों में घूमतीं हैं हैं। फारेन देशों में हवाई यात्रायें करतीं हैं। बावजूद इसके कि वो सफेदपोश हैं। और माजीद जैसे लोग जरायमपेशा ! क्या जो लोग हथियार , या ड्रग्स बेचते हैं। वो इग्गे- दुग्गे लोग हैं। सारे काम इन सफेदपोश और बड़े लोगों की इच्छा-शक्ति और सत्ता के संरक्षण के बिना आखिर कैसे हो सकता है ? इसको ऐसे समझना चाहिए कि हमारे देश के उन हिस्सों में जहाँ शराब बैन है। वहाँ शराब बिकती है। स्थानीय थाना को सेट कर लिया जाता है । आबकारी को उनका हिस्सा जाता है। इसका एक बड़ा नेटवर्क है। सियासतदानों से लेकर अफसरशाह तक सब के सब बिके होते हैं। तभी इतनी तादात में शराब बनती और बिकती है। कभी जनता की आँखों में धूल झोंकने के लिये दीपावली और दशहरे में दुकानों में दबिश दी जाती है। छोटे - छोटे पालीथीन और ताड़ी बेचने वालों को पकड़कर जेल में बँद कर दिया जाता है। अखबार का कालम भरने के लिये। कमीशन खाने वाला अधिकारी ही अपने जिले के अफसरों को डाँटता फटकारता है। साल में दस लोग भी नहीं पकड़े जाते। आखिर, जेल - मैनुअल और उसकी डायरी को मेंटेन भी तो करना होता है। यहाँ हर बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है।

थोड़ा बहुत गुलाब सिंह भी राजनीति समझता है। वो देख रहा है , कि इधर कुछ सालों में हमारे देश से क ई उधोगपति गायब हो गये हैं। बैंकों से बड़ा - बड़ा कर्जा लेकर। हजार , दो- हजार , पाँच हजार करोड़। कोई उनका कुछ नहीं बिगाड़ सका। क्या ये सब बिना मिली भगत के होता है ? क्या बड़े - बड़े एम. पी., एम. एल. ए. , मिनिस्टर से उनकी कोई साँठ गाँठ नहीं है ? बिना साँठ- गाँठ के बैंक इनको इतना बड़ा- बड़ा कर्जा दे देती है। ऐसा कैसे हो सकता है ? नहीं एक बहुत बड़ी लाबी होती है , इनकी। मिनिस्टरों से बड़ा-बड़ा करार होता है , इनका। बाहर के देशों में ये उधोगपति इन मिनिस्टरों के लिये बैंकों में इनके नाम से पैसे जमा करवा देते हैं। उनके बच्चों के लिये शापिंग माल, जिम, कामप्लेक्स बनवा देते हैं । इन पैसों से इन मिनिस्टरों के लिये विदेशों में जन समर्थन जुगाड किया - करवाया जाता है । ताकि , उनकी राजनीति वहाँ भी चमकायी जा सके। उधोगपति वहाँ भी अपनी जमीन ले सकें। कारखाने लगा सकें। अपना व्यवसाय विदेशों तक फैला सकें। उनके प्रोडक्टस विदेशों में भी जोर - शोर से बिके। उनकी आमदनी लगातार बढ़ती जाये। फिर वहाँ की सरकार में वे एक मुकाम हासिल करें। अपने लोगों के लिये लाबिंग करें। चुनाव में सरकार को फंड दिये जाते हैं। जो करोड़ो रुपये के रूप में होते हैं। ये पैसे उधोगपति सत्ता में बैठे सरकार और विपक्ष दोनों को बारी - बारी से देती है। अनुकूल -प्रतिकूल परिस्थितयों को देखकर ! सरकारें आती- जाती रहतीं हैं। जनता वही रहती है। जो उनके प्रोडक्ट खरीदती है।

गुलाब सिंह का छोटा भाई संतन विकलांग है। उसका एक हाथ नहीं है। घर में बैठे - बैठे उसका मन नहीं लगता था। सोचा कोई छोटा - मोटा कुटीर उधोग ही लगा ले। इसके लिये कुछ कर्ज बैंक से ले ले। वो कई बैंकों के चक्कर लगाता रहा। लेकिन हाल वही था। जब तक हाथ पर कुछ रखोगे नहीं। फाईल आगे नहीं बढ़ती। आज कल गुलाब सिंह के बनाये कट्टों पर संतन पालिश करने का काम

करता है।

सरकार इन उघोगपतियों के प्रत्यर्पण की बात करती है। लेकिन, लंदन और दूसरे देशों के प्रत्यर्पण कानूनों का मसौदा और उसकी जटिलतायें भी अलग - अलग हैं। जो चीज हमारे देश में अपराध है। जरूरी नहीं कि दूसरा देश भी उसे अपराध मान ले। बैंकों से पैसे लेकर भागे लोग उस देश में जाकर वहाँ अपने शापिंग माल्स , खोलते हैं। कारखाने लगाते हैं। वहाँ काम लंदन, यू. के. , और अमेरिकियों को मिलता है। अब कोई आदमी बाहर से आकर उनके देश के लोगों को काम देगा। उसके देश को कमाई देगा। तो ऐसा कौन सा ऐसा देश है , जो हमारे देश की बात मानेगा। और उन उधोगपतियों को हमारे सुपुर्द कर देगा ? सभी अपने- अपने स्वार्थ से जुड़े हैं।

क्या हमारे देश के लोग नहीं चाहते कि हमारे देश में बड़ी - बड़ी कंपनियाँ लगें। लोगों को रोजगार मिले। बेकारी खत्म हो। दर असल दुनिया के सभी मुल्कों में रोजगार एक प्रमुख समस्या के रूप में उभरकर सामने आयी है। एक ही देश के दो राज्यों के भीतर बाहरी- भीतरी की लड़ाई छिड़ी हुई है। कुछ सालों पहले आस्ट्रेलिया में एक आई. टी. के एक छात्र की हत्या हो गई थी। उस देश के लोगों को लगता है , कि भारतीय छात्र उनकी नौकरियाँ खाते जा रहें हैं। विदेशों में भारतीय छात्रों पर हाल के वर्षों में हमले बढ़े हैं। इसका कारण केवल और केवल रोजगार का छिन जाना है। अपने देश में भी महाराष्ट्र में बिहारियों और यू. पी. के लोगों को मारा और भगाया जा रहा है। सब प्राथमिकता सूची में आगे रहना चाहते हैं। अपने लोगों को सब जगह काम मिलना चाहिए। दूसरे लोग हाशिये पर धकेल दिये जाते हैं।

फिर, माजीद या गुरविंदर जैसे लोग थोड़ा बहुत हेर - फेर कर लेते हैं। तो इन सरकारों का क्या जाता है ? ये तो जीने और खाने के लिये हेर - फेर करते हैं। लेकिन, ये सत्ता में फेर बदल या हेर - फेर नहीं करते ? चुनाव के बाद विधायकों को खरीदकर विपक्षी- पार्टी अपना सरकार बनवाती है। ये लोकतंत्र की हत्या नहीं तो और क्या है ? वकील पैसे लेकर अपराधी को बचाता है। बनिया अनाज में कंकर- पत्थर मिलाता है। ग्वाला दूध में पानी मिलाता है। सब अपने - अपने स्तर से हेर - फेर करते हैं। अपनी- अपनी सुविधा के अनुसार। फिर देश के इस पार और उस पार सियासतदान एक तरफ हमारी कौम को खतरा है। तो दूसरी तरफ हमारी कौम को खतरा है का राग अलापते हैं। और शिक्षा, मँहगाई, बेरोजगारी के मुद्दे पर चुप्पी साध लेते हैं। दोनो देशों की सेनायें और जनता आपस में लड़ती और मरती रहती हैं। कभी देखा है इस पार के या उस पार के किसी नेता के बच्चे या नेता को मरते हुए। उनके लिये तो वी. वी.आई. पी. सुरक्षा की व्यवस्था होती है। किसी हँगामे में सिक्यूरिटी फोर्सेज नेताजी को सुरक्षित बाहर लेकर निकल जाती है। अखबार के पृष्ठ पर किसानों और मजदूरों के बच्चे जो या तो फोर्सेज में या सेना में होते है , मारे जाते हैं। सरहद पर या वी. वी. आई. पी. की सुरक्षा में जो गोली खाता है , वो , मजदूर या किसान का बेटा ही होता है।

"अजी, सुनते है। आज शाम का खाना नहीं बनेगा क्या? जाओ जाकर जँगल से लकड़ियाँ बीन लाओ। " लाड़ो ने हाँक लगाई तो गुलाब सिंह की तँद्रा फिर से एक बार टूटी।

उसने पाईप को आग पर गर्म करने वाले पँखे को बँद किया और चल पड़ा जँगल की ओर लकड़ियाँ चुनने ।

थोड़ी देर बाद वो एक बोरे में थोड़े से पत्ते चुनकर जँगल से ले आया। पैतन पुर छोटा सा गाँव है। लेकिन उसके गाँव घर में उज्जवला का अबतक कोई कनेक्शन नहीं आया है। राशनकार्ड भी नहीं बना है , उसका। सिगड़ी में आग सुलग रही थी। उसने पतीली चढ़ाई चाय बनाने के लिये। उस आग में उसको अपना भविष्य भी धू - धू करके जलता दिखने लगा था। उसमें अब उस आग से आँख मिलाने का ताव नहीं बचा था। वो , क्या करेगा जब उसका बच्चा भी अपराधी बन जायेगा ?

उसके दादा-पड़दादा आजादी के आँदोलन में स्वतंत्रता सेनानियों के लिये तलवार , फरसा , गँडासा और भाला बनाते थें। अंग्रेजों से लड़ाई के लिये। लेकिन उन दिनों दूसरे लोग या विदेशी हमारे दुश्मन थें। अब अपने लोग हैं। जो सत्ता में बराबर की भागीदारी रखते हैं। लेकिन, हमारे हक की बात कभी नहीं करते।

फिर , कौन अपने और कौन बेगाने लोग ? जो अपने हैं , घोटाले कर रहें हैं। हमारे हिस्से का सब कुछ सफेदपोश बनकर हमारे ही सामने खा जा रहें हैं। भेंड़ों का शिकार कुछ भेंडिये कर रहें हैं। भेंड़ों

का एक भरा पूरा झुँड़ है। भेड़िये, शेर की तरह भेंड़ के पुट्ठों को नोच खाना चाहते हैं। और भेंड़ों का झुँड असहाय होकर एक-दूसरे को ताक रहा है। इससे भले तो ब्रिटिशर थे। कम से कम आजादी के इतने दिनों के बाद भी बने पुल - पुलिया , साबुत बचे हैं। यहाँ तो उदघाट्न के दो दिन बाद ही पुल - पुलिया गिर जा रहें हैं। क्या हुआ आजादी के पचहत्तर -छिहत्तर सालों के बाद भी ? विकास, गुलाब सिंह के गाँव का रास्ता जैसे भटक सा गया है। उसके गाँव में आज भी पक्की सड़क नहीं बनी है। चापाकल तो हैं , लेकिन उनमें पानी नहीं आता। सिस्टम की तरह विकास भी अंधा हो गया है !

"बाबा काम हो गया क्या ? कार वाली पाईप समेट कर रख दूँ ? "करमजीत सिगड़ी पर चढ़ी चाय को देखते हुए बोला।

"नहीं बेटे , कार की पाईप बाद में रखना। इधर आ मेरे पास आकर बैठ। " करमजीत वहीं पास में आकर जमीन पर बैठ गया।

"बेटा, कोई भी बाप ये नहीं चाहेगा कि उसका बेटा बड़ा होकर कट्टा बनाये। कल से ये कट्टा बनाने का काम मैं छोड़ दूँगा। क्या करूँगा, तुम्हें अपराधी बनाकर ! कल बाहर चला जाऊँगा। तुझे और तेरी अम्मा को भी साथ ले चलूँगा। चेन्नई तेरे मामा के पास। तेरा मामा वहीं पोर्ट पर काम करता है। वहीं कोई काम खोज लेंगे। ना तो अब कट्टा बनाऊँगा। ना ही बेचूँगा। अब कभी इस गाँव में नहीं लौटेंगे हम। तुझे अपने सामने खत्म होते हुए नहीं देख सकता, बेटा।"

और गुलाब सिंह ने अपने बेटे करमजीत को अपने से चिपटा लिया। वो लगातार रोये जा रहा था।

करमजीत को अब भी ये समझ में नहीं आ रहा था , कि आखिर हुआ क्या है ?

लेकिन; क्या इतने भर से ये समस्या खत्म हो जानी थी ? उस गाँव में जब सैकड़ों की संख्या में गुलाब सिंह जैसे लोग थे। सैकड़ों की संख्या में करमजीत सिंह और सीमा के उस पार माजीद जैसे लड़के थे ? ...

राम की शक्ति-पूजा : मिथक और आधुनिकता

प्रांजलि देवी

प्रस्तुत शोध-आलेख का उद्देश्य सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की प्रसिद्ध कविता 'राम की शक्ति-पूजा' में मिथक और आधुनिकता के प्रसंगों का अध्ययन करना है। भारतीय संस्कृति में प्रचलित पौराणिक राम-सीता का आख्यान कविता का कथाधार है। हालांकि निराला ने कृतिवास की 'बांग्ला-रामायण' को शक्ति-पूजा का मूल स्रोत बनाया है। 'राम की शक्ति-पूजा' में मिथकीय प्रसंगों और आधुनिकता के नव-आयामों दोनों का रूप देखने के लिए मिलता है। इस आलेख में राम की शक्ति पूजा कविता को आधार बना कर मिथक और आधुनिकता दोनों का आलोचनात्मक विश्लेषण करने की कोशिश की गई है।

'राम की शक्ति-पूजा' कविता निराला के आत्मनिर्वासन एवं आत्मस्थापन का संश्लिष्ट दस्तावेज है, जो वर्ष 1936 में प्रकाशित हुई। राम की शक्ति-पूजा का मुख्य स्रोत कृतिवास की 'बांग्ला-रामायण' है, किंतु 'बांग्ला-रामायण' की कथा में वर्णन की स्थूलता, भावुकता एवं अर्थ में एकहरापन है; वहीं निराला की 'शक्ति-पूजा' में प्रतीकात्मक, बिम्बात्मकता, भावोत्पादकता एवं वर्णन की सक्ष्माभिव्यक्ति आदि विशेषताएं मौजूद हैं। डॉ.बच्चन सिंह 'राम की शक्ति-पूजा' और 'बांग्ला-रामायण' की तुलना करते हुए लिखते हैं कि "बांग्ला-रामायण जितनी बहिर्मुखी है राम की शक्ति-पूजा उतनी ही अंतर्मुखी।"राम की शक्ति-पूजा में कवि ने आत्मचेतन को विश्वचेतन के रूप में साकार करने के लिए भारतीय संस्कृति में प्रचलित मिथकों का सहारा लिया है। राम की शक्ति-पूजा में दो कविताओं का सारतत्व है- तुलसीदास और सरोज-स्मृति का। इनके अलावा एक अपराजित मन की कल्पना और दूसरे अपराजित मन के अस्तित्व की अनुभूति है। राम और रावण की सेना के युद्ध में राम अपनी सेना की पराजय एवं दिव्यास्त्रों की असफलता से विचलित होकर शक्ति की उपासना करते हैं। यह मिथकीय प्रसंग कविता के शीर्षक को सार्थकता प्रदान करता है।

प्रस्तुत आलेख का विषय मिथक और आधुनिकता के संदर्भ में राम की शक्ति पूजा का वर्णन करना है। अतः सर्वप्रथम मिथक पर विचार करना होगा और समझना होगा कि मिथक क्या है? मिथक की समाज में निर्मिति और स्वीकारता कैसे हुई ? यह 'शक्ति-पूजा' में किन प्रसंगों में प्रयोग किया गया है ? मिथक पौराणिक-कथा को नवीन संदर्भ में किस प्रकार नवीन अर्थ-वत्ता प्रदान करता है? आदि कुछ प्रश्न है जो हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं। 'मिथक' अंग्रेजी के 'Myth' शब्द का हिंदी प्रतिरूप है। मिथक का संबंध 'मौखिक-कथा' से माना जाता है। हिंदी में मिथक के लिए 'पुरा-वृत्त', 'पुरा-कथा', 'देव-कथा', 'धर्म-कथा', 'पुराण-कथा' 'पुराख्यान' आदि अनेक शब्द प्रचलित है ; किंतु हिंदी में 'मिथक' शब्द को ही सर्वमान्य माना गया है। आरंभिक मनुष्य द्वारा कल्पित अतिमानवीय शक्तियां कालांतर में मिथक बनीं। आदिमानव प्राकृतिक शक्तियों तथा व्यापारों के रहस्यों को पूरी तरह समझने-समझाने में असमर्थ होने के कारण ईश्वरीय शक्ति को आधार मान लेता था। धीरे-धीरे यह कथाएं धर्म-कथा,

धार्मिक-आख्यान, एवं कर्मकांड बनते-बिगड़ते संस्कृति का अभिन्न अंग बन जाती हैं। डॉ. जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव मिथक की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि "मानव मस्तिष्क की विश्व-व्यापकता, मानव-मात्र की संरचनात्मक मूलभूत समानता के उदघोषक हैं। विश्व और विश्व की वस्तुओं तथा इसमें रहने वाले प्राणियों के उद्भव से संबंधित मिथक सर्वत्र एक जैसे हैं। देव-रूपों और उनके नामों में मिलने वाली अद्भुत समानताओं के पीछे मानवीय मस्तिष्क की एकता ही है।" प्राचीन पुराकथाओं का तत्व जो नवीन स्थितियों में नए अर्थ का वहन कर सके, वह मिथक कहलाता है। मिथकों का जन्म समाज-व्यवस्था को कायम करने के लिए हुआ ऐसा प्रसिद्ध समाजशास्त्री इमाइल दुर्खीम मानते हैं। मिथक लोक-विश्वास से जन्मते हैं। पुरातन काल में स्थापित किए गए धार्मिक मिथकों का मंतव्य स्वर्ग तथा नरक का लोग भय दिखाकर लोगों को विसंगतियों से दूर रखना था। काल की निरन्तर प्रवाहमान धारा में मिथक शब्द का अर्थ-विस्तार होता रहा और इसका परिणाम यह हुआ कि मिथक के अन्तर्गत लोक-साहित्य, मानव-विज्ञान, समाज-विज्ञान, मनोविश्लेषण तथा ललित-कथाएं आदि सभी समाहित हो जाते हैं। यही कारण है कि मिथक आज की आलोचना का एक सशक्त महत्वपूर्ण और लोकप्रिय पहलू बनता जा रहा है।

हिंदी साहित्य का उद्भव एवं विकास निरंतर मिथकों से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है। आदिकालीन साहित्य के आरंभ से ही 'स्वयंभू' का 'पऊमचरिउ' (रामकथा) एवं 'पुष्पदंत' का कृष्ण काव्य मिथकीय कथा के आधार पर अधिरचित किए गए थे। अतः कहने का तात्पर्य है कि साहित्य के सभी युगों में लेखकों ने मिथकों का आश्रय लिया है। हिंदी कविता में 'प्रियप्रवास', 'साकेत', 'पंचवटी-प्रसंग', 'यशोधरा', 'कामायनी', 'राम की शक्ति-पूजा', 'द्रौपदी', 'भस्मांकुर', 'अंधायुग', 'महाप्रस्थान', 'कनुप्रिया', 'शबरी', 'शंबूक-वध', 'संशय की एक रात', 'उर्वशी', 'रश्मिरथी' आदि ऐसे महाकाव्य और खण्डकाव्य है जिनकी निर्मिति में मिथकीय कथा को युगीन-समस्याओं एवं प्रतीकात्मक बिंबों के माध्यम से आधुनिक भाव-बोधों का चित्रण किया गया है और पौराणिक मिथकों को नवीन-अर्थवत्ता प्रदान की गई है। समय-समय पर मिथकों की उपज साहित्य को नव-आयामों से विभूषित करती रही है। मिथक वह शक्ति है, वह ओज है, भाव-बोध है जिसकी साहित्य में उपादेयता को शब्दबद्ध कर पाना सरल नहीं है। विद्वान अन्सार्ट कैसिरार 'मिथक' का क्षेत्र इतना व्यापक मानते हैं कि 'मानव जीवन का कोई भी क्रियाकलाप ऐसा नहीं है जो मिथकीय न हो। "

कोई भी महान कवि अपने समय की गहराई से जुड़ा होता है। वह अपने समय के राजनैतिक, सामाजिक एवं मानसिक संघर्षों को प्रतीकात्मक आख्यान के जरिए रचता है ; इसी के अंतर्गत 'राम की शक्ति-पूजा' को रख कर देख सकते हैं। वर्ष 1936 के आसपास भारतीय स्वाधीनता संग्राम निरुत्साहिता के दौर में था। असहयोग-आंदोलन, चौरी-चौरा कांड, काकोरी कांड, सविनय अवज्ञा आंदोलन, भगत सिंह, सुखदेव, और राजगुरु को फांसी, कम्युनल अवार्ड, आदि घटनाओं के निरंतर घटित होने के कारण भारतीय जनमानस में हताशा और निराशा के बादल छाए हुए थे। जनता में आन्दोलन की स्वत: स्फूर्ति हेतु गांधीजी जमीन तलाश रहे थे। इधर निराला एक-के-बाद एक पिताजी की असामयिक मृत्यु, पत्नी मनोहरा देवी की असामयिक मृत्यु, पुत्री सरोज की असामयिक मृत्यु से अन्तर तक टूट चुके थे। निराला का आत्म संघर्ष गुम्फित रूप में अभिव्यक्त होने के लिए विराट रूप धारण कर रहा था, तो उधर गांधी व देश की जनता का मन पराजय से भरा था। ऐसे समय में निराला ने एक ऐसे प्रसंगों को चुना ; जहां राम युद्ध के कारण निराशा एवं हताशा के शिकार हैं। 'राम की शक्ति-पूजा' में राम निराला, गांधी जी, एवं देश की समस्त जनता के प्रतीक है जो युद्ध के परिणामों को लेकर संशय की स्थिति में है। डॉ बच्चन सिंह ने लिखा है कि "निराला की समस्त रचनाओं में युग-बोध, जातीय-जीवन का तेवर एवं वैयक्तिक यातना का अद्भुत मिश्रण हुआ है।"

'राम की शक्ति-पूजा' मिथकीय चेतना का अद्वितीय महाकाव्य है। इसकी कथा राम, सीता, हनुमान, महाशक्ति देवी-दुर्गा की पौराणिक कथा का आलंबन लेकर रची गई है। रामायण की कथा तमिल, तेलुगू, ओड़िया, बांग्ला, कन्नड़, मलयालम लगभग सभी भारतीय भाषाओं में लिखी गई। निराला ने बाल्मिकी कृत 'संस्कृत रामायण' एवं कृतिवास की 'बांग्ला-रामायण' की कथा को आधार बनाकर 'राम की शक्ति-पूजा' की रचना की है। निराला की शक्ति पूजा में युगीन- चेतना, मिथकीय-चेतना,भाषाई-चेतना, बिम्बीय-चेतना का ऐसा अद्वितीय मिश्रण है कि आधुनिकता और मिथकीय दोनों रूपों को एक साथ अभिव्यक्त करने में सफल सिद्ध होती हैं। 'राम की शक्ति-पूजा' में मिथकीय कथा का वर्णन राम को रावण की जीत एवं अपनी हार का संशय, महाशक्ति का रावण के पक्ष में होना, हनुमान का ऊर्ध्वपातन, राम द्वारा शक्ति की आराधना,देवी का कमल चुराना, राम द्वारा कमल के एवज में अपना नेत्र अर्पित करना एवं महाशक्ति देवी दुर्गा द्वारा राम को वरदान देना और राम के बदन में लीन होना आदि मिथकीय प्रसंग हैं।

'राम की शक्ति-पूजा' का आरंभ 'रवि हुआ अस्त' पंक्ति से होता है अर्थात् सूर्यास्त के बाद रात्रि हो चुकी है जिसमें आकाश अंधकार उगल रहा है। राम-रावण की सेना का युद्ध शाम के समय समाप्ति की ओर है। राम-रावण की सेना के दिन भर के अनिर्णायक युद्ध के बाद अमानिशा के घने अंधकार, दिशाओं के अज्ञान, पवनों की स्तब्धता,समुद्र की अप्रतिहत गर्जना के महाअंधकार में राम का

अंतर्द्वंद और गहरा होता जा रहा है। राम हार के संशय को लेकर भयभीत हैं। निराला लिखते हैं कि-

'है अमानिशा, उगलता गगन घन अंधकार,
खो रहा दिशा का ज्ञान ; स्तब्ध है पवन चार,
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल,
भधर ज्यों ध्यानमग्न; केवल जलती मशाल।
'रह रह उठता जग-जीवन में रावण जय भय।'

इसी आशंका के बारे में सोचते-सोचते राम के आंखों से आंसुओं की धारा प्रवाहित होने लगती है। राम को लगता है कि रावण के साथ महाशक्ति है जो राम के प्रत्येक वार को, प्रत्येक अस्त्र-शस्त्र को निष्फल कर दे रही है। 'राम की शक्ति-पूजा' में हनुमान का उर्ध्वपातन अति चमत्कारिक है। हनुमान को ईश्वरीय गुणों से युक्त रूप में प्रस्तुत करता है। हनुमान राम के आंसू देख कर क्रोधित होकर महाविनाश के लिए उद्धत हो उठते हैं। हनुमान के प्रबल उद्वेग को रोकने करने के लिए देवताओं की आकस्मात् सभा बुलायी जाती है। हनुमान के क्रोध को शमित करने का उपाय देवता खोजने लगते हैं। महाशक्ति को हनुमान का क्रोध शमित करने करने की सलाह दी जाती है। महाशक्ति येन-केन-प्रकारेण परम भक्त हनुमान को मनाने-समझाने का प्रयत्न करती हैं। यह प्रसंग विशुद्ध रूप से मिथकीय चेतना पर आधारित है। विशुद्ध रूप से माननीय क्रिया-कलापों कु क्षेत्र से कई गुना अपेत है। डॉ. अमरनाथ लिखते हैं कि "निराला की शक्ति-पूजा' में भी अति प्राकृत तत्व और अनुष्ठानों का विधान किया गया है। हनुमान का ऊर्ध्वपातन अतिप्राकृत तत्त्व है। शक्ति-पूजा के अनुष्ठान को उसकी प्रतीकात्मकता में सार्वभौम बना दिया गया है।"एक अन्य प्रसंग है कि युद्ध में महाशक्ति रावण का साथ दे रही थी। उसे अपने पक्ष में करने के लिए समर छोड़ कर राम नवरात्र में खंडित न होने वाली देवी-दुर्गा की पूजा का अनुष्ठान करते हैं। जामवंत राम को 'शक्ति की करो मौलिक कल्पना;करो पूजन' की सलाह देते हैं। राम देवी-दुर्गा का अनुष्ठान करते हैं तभी महा-शक्ति राम की परीक्षा लेती हैं और एक कमल चुरा लेती हैं। राम को याद आता है कि बचपन में मां उन्हें 'राजीव-नयन' कहती थी ; इस कारण राम अपना एक नयन शक्ति को अर्पित करने का निर्णय लेते हैं;तभी शक्ति प्रकट होती है और दर्शन देती हैं। राम द्वारा शक्ति की पूजा का अनुष्ठान सफल होता है। शक्ति राम को विजय-वर देती है कि-

होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन।
कह महाशक्ति राम के बदन में हुई लीन।।

यहां पर देवी-दुर्गा का जो वर्णन निराला ने किया है, वह विशुद्ध रूप से पौराणिकता का शब्दात्मक बिम्ब है और शक्ति की पौराणिक छवि प्रस्तुत करता है।

उदाहरण दृष्टव्य है-

साधु, साधु, साधक धीर, धर्म-धन धन्य राम!"
कह, लिया भगवती ने राघव का हस्त थाम।
देखा राम ने, सामने श्री दुर्गा, भास्वर
वामपद असुर-स्कन्ध पर, रहा दक्षिण हरि पर।
ज्योतिर्मय रूप, हस्त दश विविध अस्त्र सज्जित,
मन्द स्मित मुख, लख हुई विश्व की श्री लज्जित।
हैं दक्षिण में लक्ष्मी, सरस्वती वाम भाग,
दक्षिण गणेश, कार्तिक बायें रणरंग राग,
मस्तक पर शंकर! पदपद्मों पर श्रद्धाभर
श्री राघव हुए प्रणत मन्द स्वर वन्दन कर।

'राम की शक्ति-पूजा' में आधुनिकता के विविध आयाम है। राम निराला के अपराजित मन, गांधी की निरुत्साहितता, संशय और द्वन्द्व और भारतीय जनता के पराजित न होने वाले मन का प्रतीक है तो दूसरी तरफ राम भारतीय जनमानस एवं मध्यवर्गीय परिवार में संघर्षरत सामान्य मानव के प्रतीक के रूप में चित्रित किए गए हैं। निराला ने राम के चरित्र को वाल्मीकि के राम और तुलसी के राम से अलग।

आधुनिक मानव के रूप में वर्णित किया है। आधुनिकता द्वितीय विश्वयुद्ध के समय से प्रचलित एक नया शब्द है। राम के आधुनिक चरित्र को समझने से पहले आधुनिकता की अवधारणा को समझना आवश्यक है। आधुनिकता अंग्रेजी के 'Modernity' शब्द का हिंदी रूपांतरण है। आधुनिकता को परिभाषित करते हुए 'हिंदी आलोचना की परिभाषिक शब्दावली' में डॉ अमरनाथ लिखते हैं कि "आधुनिकता धर्म, प्रकृति, परंपरा, नैतिकता, प्रतिबद्धता, आस्था, मूल्य तथा प्रत्येक प्रचलित विचार तथा वस्तुस्थिति और व्यवस्था को चुनौती देती है। विद्रोह उसका मूल स्वर है।"निराला ने एक ऐसे प्रसंग को चुना है जिसके माध्यम से वह अपनी विषम परिस्थितियों को व्यक्त कर सकें। निराला का जीवन एक ओर गार्हस्थिक स्थितियों के प्रतिकूल था तो दूसरी ओर साहित्यिक जीवन की आलोचनाओं से। ऐसे में निराला पूर्व प्रचलित उक्ति के माध्यम से कहते है कि 'अन्याय जिधर है उधर शक्ति'। तत्कालीन औपनिवेशिक शासन में प्रथम विश्व युद्ध में अंग्रेजों की विजय का प्रतीक माना जा सकता है कि शक्ति अधिकांशतः अन्याय के पक्ष में हो जाती है। वर्तमान राजनीति, चुनावी समीकरण, पैसे का दुरुपयोग करके आपराधिक उम्मीदवार जनता के राजा बनकर विकास और न्याय के बैनर तले नफरत, साम्प्रदायिक भाषणों आदि के माध्यम से शक्ति का दुरूपयोग करते हैं। निराला ने 'शक्ति' की मौलिक कल्पना की बात की। रावण को औपनिवेशिक सत्ता का प्रतीक माने एवं राम को भारतीय स्वाधीनता संग्राम के नेता गांधी जी को तो; यह कविता अधिक सार्थक अर्थ देने लगती है। जामवंत सत्य असत्य का विभेद

करते हुए शक्ति की मौलिक कल्पना करने की सलाह देते हैं।

उदाहरण देखें-

रावण अशुद्ध होकर भी यदि कर सका त्रस्त,
तो निश्चय तुम हो सिद्ध करोगे उसे ध्वस्त;
शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो पूजन।

यहां पर सत्य-असत्य का संघर्ष अलग-अलग मुखौटों में हर दौर में दिखाई पड़ता है। सत्य के पक्ष को असत्य से टकराने के लिए शक्ति की मौलिक कल्पनाएँ करनी ही पड़ती हैं। गांधी द्वारा 'अहिंसा' को शक्ति बना देना ऐसी ही मौलिक कल्पना का परिणाम था। इन पंक्तियों में मिथक के माध्यम से आधुनिकता का एक ऐसा अर्थ निकलता है जो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की स्थितियों का वर्णन नए दृष्टिकोण से किया जा सकता है।

आदि शक्ति देवी-दुर्गा द्वारा चुराया गया नीलकमल का मिथक का प्रसंग, राम-सीता का प्रेम, निराला-मनोहरा देवी के प्रेम के साथ-साथ 'स्त्री-मुक्ति' की कामना भी है; राम के मन में बार-बार रावण के घर में कैद सीता की छवि कौंध जाती है। निराला का आत्मनिर्वासन 'तुलसीदास' में रत्नावली के माध्यम से तो 'सरोज-स्मृति' में सरोज की सेज सजाते हुए निराला अपनी प्रिया को याद करते हैं। 'राम की शक्ति-पूजा' में निराला स्वयं को धिक्कारते हुए लिखते हैं कि-

जानकी! हाय उद्धार प्रिया का हो न सका।
वह एक और मन रहा राम का जो न थका।

इस कथन का राम के मुख से निकलना इस बात का प्रमाण है कि सीता की मुक्ति ही कविता का केंद्रीय तत्व है। राम-रावण का युद्ध भी सीता की रक्षा के लिए होता है। 'नारी-मुक्ति' निराला का स्थायी भाव है।' साहित्य परंपरा में पुत्र के प्रति वात्सल्य तो खूब दिखता है किंतु 'सरोज-स्मृति' में पुत्री के प्रति वात्सल्य दिखाकर एवं 'शक्ति-पूजा' में पत्नी के प्रति स्नेह दिखाकर रूढ़िवादी पुरुष प्रधान समाज में 'नारी-मुक्ति' का आवाहन करते हुए निराला आधुनिकता का परिचय देते हैं। निराला आत्मभर्त्सना करते हुए लिखते हैं -

धिक जीवन को जो पाता ही आया विरोध,
धिक साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।

निराला के राम भगवान राम नहीं है; बल्कि मानव राम है, पुरुषोत्तम राम हैं। एक सामान्य व्यक्ति की तरह राम के अंदर भी आन्तरिक व्याकुलता एवं छटपटाहट साकार हो जाती है। उनके नेत्रों से चुपचाप अश्रुओं की धारा प्रवाहित होने लगती है। 'राम की शक्ति-पूजा' की प्रमुख विशेषता यह है कि परंपरागत राम के देवत्व रूप से अधिक आधुनिक जीवन के धरातल पर एक सामान्य मनुष्य की भांति खड़े होते हैं। 'राम की शक्ति-पूजा' में आधुनिकता का प्रमुख तत्व यह है कि कवि ने पौराणिक या ऐतिहासिक आख्यान लेकर रचनात्मक कल्पना के माध्यम से एक ओर प्राचीन वातावरण को अत्यंत सजीव ढंग से प्रस्तुत किया है तो वहीं दूसरी ओर आधुनिक जीवन के द्वन्द्व को भी तीखे ढंग से व्यक्त किया है। राम की मानवीयता, उनका संशय, निराशा से ग्रस्त होना, उनकी विवशता और निरुपायता का एहसास तथा संकट के दौर में प्रिया सीता की याद आना; राम के चरित्र को और आधुनिक बनाता है जिससे आज का मध्यवर्गीय पाठक उसके प्रति आत्मीयता अनुभव कर पाता है। मुक्तिबोध ने लिखा है कि "आज का रामचरितमानस पढ़ते समय राम के चरित्र से जो आंसू निकलते हैं, वे सामंती विश्व दृष्टि के आंसू हैं। उस विचार से 'शक्ति-पूजा' के राम की विवशता देखकर यदि हम द्रवित होते हैं तो उसका संबंध आज के यथार्थ से हैं।"

'राम की शक्ति-पूजा' में एक ऐसे प्रसंग की कथा को आधार बनाया गया है,जिसकी वस्तुसंरचना एक साथ कई पक्षों को समेटती है। सीता की मुक्ति इस कविता का कविता केंद्रीय तत्व तो है लेकिन एकमात्र नहीं है। क्योंकि यह कविता राष्ट्रीय आंदोलन, शक्ति की मौलिक कल्पना,पौराणिक राम का मानवीय रूपांतरण, निराला का आत्मसंघर्ष, सत्य-असत्य संघर्ष जैसे बिंदुओं को आधार लेकर आधुनिकता की पृष्ठभूमि पर खरी उतरती है। वास्तव में 'शक्ति-पूजा' हिंदी साहित्य की सांस्कृतिक उपलब्धि के साथ-साथ खड़ीबोली की ओजस्वी रचनाशीलता की पहली कविता है।

संदर्भ-सूची

1. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021
2. श्रीवास्तव, जगदीश प्रसाद, मिथकीय कल्पना और आधुनिक हिंदी काव्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1985
3. शर्मा, रामविलास, निराला की साहित्य साधना, राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली, 2021
4. नवल, नन्दकिशोर, निराला और मुक्तिबोध, चार लम्बी कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000
5. सिंह, दूधनाथ, निराला आत्महन्ता आस्था, लोकभारती प्रकाशन,नई दिल्ली, 2014
6. सिंह, बच्चन, क्रांतिकारी कवि निराला, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2003
7. वही पृ. सं. 353
8. शर्मा, रामविलास(संपा.)राग-विराग, साहित्य सरोवर प्रकाशन, आगरा, 2018
9. Kavitakosh.Org/kk/राम की शक्ति-पूजा/सूर्यकांत त्रिपाठी निराला
10. अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020
11. वही, पृ. सं. 283

सतपुड़ा की पगडंडियाँ : सहजीविता और संवेदनाओं की काव्यात्मक अभिव्यक्ति

डॉ. अनीश कुमार

'सतपुड़ा की पगडंडियां' युवा कवि रमेश गोहे का सद्य: प्रकाशित पहला कविता संग्रह है। इन कविताओं से गुजरते हुए सहज ही महसूस किया जा सकता है कि यहाँ जो 'मैं' है, वह एक 'समाज' है। वह सभी कालों और सभ्यताओं के मनुष्यों का प्रतिनिधित्व करता है। बेशक वह कवि के समय का, हमारे अपने समय का निवासी है लेकिन उसे भरपूर अहसास है कि वह एक परंपरा में स्थित है, बल्कि उसी के हाथों निर्मित है। कवि इन कविताओं में स्वयं मौजूद है।

कविता प्रकाशित होने के पश्चात जब पाठक के सम्मुख आती है तो वह उसका आस्वादन करता है। मुख्यत: पाठक उस रचना में भाव ढूंढता है, कोई बिम्ब, कोई प्रतीक या कोई विचार उसे उद्वेलित करता है वह उस कविता में अपने आसपास के परिदृश्य की तलाश करता है। पाठक के मन की कोई बात यदि उस कविता में हो तो वह उसे पढ़कर प्रसन्न होता है। यदि कविता में उसके आक्रोश को अभिव्यक्ति मिलती है या उसे अपनी समस्याओं का समाधान नजर आता है तो वह कविता उसकी प्रिय कविताओं में शामिल हो जाती है। रमेश गोहे की कविताएं कविता की इन परम्पराओं में अपने को फिट पाती हैं। जब कवि स्वयं लिखता है कि 'मेरी कविताओं को पढ़ना मेरे साथ चलने जैसा है। मेरे भोगे हुए यथार्थ के बहाने मेरी कविताओं को पढ़कर अपने मन की तहें खोलने जैसा है और कुछ हद तक मुझे समझने जैसा भी। मेरी कविताएं निश्चित रूप से मेरे जीवनानुभवों, आत्मसंघर्षों, संवेदनात्मक ज्ञान और सांसारिक सुख-दुख की पीड़ाजन्य अनुभूतियों का दस्तावेज़ हैं।'

रमेश गोहे की कविताओं की विषयवस्तु में विविध संवेदनात्मक अभिव्यक्ति है। यहां प्रकृति भी है और प्रेम भी, बम भी है और बारूद भी, गांव भी है और शहर भी। रमेश गोहे 'सतपुड़ा की पगडंडियां' के माध्यम से सम्पूर्ण जंगल-गाथा कह देने में संकोच नहीं करते। ये कविताएं जमीन से जुड़कर मानवीय अस्मिता पर प्रहार करती नीतियों के प्रति आवाज उठाती हैं। कविताओं में सौंदर्य का बखान करने के लिए उन्हें बाह्य रूपकों की आवश्यकता नहीं पड़ती बल्कि कवि अपनी परंपरा से जुड़ी चीजों में से ही रूपकों का निर्माण करता है। कविताएं रचाव व बचाव की प्रवृत्ति को आत्मसात करती हुई खत्म होती मानवीय संवेदना और सहजीविता को पुनर्स्थापित करने की वकालत करती हैं। कविताएं मनुष्यता का आख्यान रखती हैं। जहां आज के समय में मनुष्य के अंदर स्वार्थपूर्ति की भावना आ गई है वहीं कवि आगे आकर संवेदना को समझने का प्रयास कर रहा है।

मैं यहां ठीक हूं!
आशा है तुम भी वहां ठीक होंगे!
चिट्ठियों में हम / न जाने क्या-क्या लिखते जाते हैं!
चिट्ठी लिखते समय
हम कितने स्वस्थ हो जाते हैं!

कवि सहजीविता की बात करता हैं। सपाटबयानी रमेश गोहे की विशेषता है। कविता प्राकृतिक और मानवीय राग का सुंदर चित्रण है।

तुम अपनी बात कहो / मैं सुनता हूं
तुम्हारी सालों की पीड़ा का दर्द कह दो मेरे कानो में।

कवि ने अपने समय और समाज की संवेदना को ध्यान में रखते हुए कविता की विषयवस्तु का चयन किया है। उनकी कविता मुक्ति के स्वप्न की कविता है। उनके यहां स्वप्न बार बार दुहराया जाने वाला का विषय है। रमेश गोहे की कविताओं का परिदृश्य काफी बहुमुखी और विविधतापूर्ण है। वस्तुत: हिन्दी कविता का संसार या क्षितिज बहुत फैलाव लिए हुए है। दरअसल कविता की भाषा कुछ तो कवि के पास सहज रूप में उपलब्ध होती है, कुछ अभ्यास से कवि अपनी भाषा के रूप में सुधार भी लाता है। रमेश गोहे ने भाषा का भावबोध एकदम सरल रखा है जिससे उसके शिल्प में दुरूहता नहीं आए। ऐसे समय में जब कविता का परिदृश्य साहित्य की राजनीति से संचालित हो रहा हो, कुछ जरूरी बातों को कहने के लिए खतरे उठाने ही होंगे। ऐसे में रमेश गोहे स्पष्ट लिखते हैं

कुत्तों का आतंक है,
और बंदर / बच्चों को पेट से चिपटाए,
हाँफ-हाँफ कर दौड़ रहे हैं।

किसानों के लिए भी कवि के अंदर उतनी ही संवेदना है जितना कि प्रेम को बचाने के लिए-

अन्नदाता / जागो और देखो
धरती के साथ दु:शासन
खेल रहा है, / चीरहरण का खेल!
रचा जा रहा है कोई षडयंत्र,
हल की जगह चलाये जा रहे हैं बुल्डोजर।

आज कविता का संसार औसत का संसार है। कवि जिस जमीन में रहता है उस जमीन और परिवेश जिसे हम व्यापक अर्थों में लोक की संज्ञा देते हैं उसका सन्निवेश। और जिस लोक पर कविता लिखी जा रही हो उस लोक की संस्कृति, भाषा व सामाजिक संरचना का पूरा बोध होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं है तो कविता में वास्तविकता भ्रामक कल्पना के रूप में प्रवेश करती है और पाठक को मिथ्या तर्क देते हुए लोक की वास्तविक विसंगतियों से ध्यान भटका देती है। कवि के लोक को हम कवि "व्यक्तित्व" का सन्निवेश कह सकते हैं। कविता में कवि के व्यक्तित्व का प्रवेश ही कवि के लोक का प्रवेश है। इससे कविता में "यथार्थ" बचा रहता है और भ्रम की संभावनाएं समाप्त हो जाती हैं। एक कविता देखिए-

गुब्बारे जो अपने देश की हवा से फूलकर
ऊंची उड़ान भरते हैं
सात आसमान पार करते हैं
पर वापस लौटकर नहीं आते कभी।

कविताओं में वैयक्तिकता भी प्रमुखता से उभर करके आई है। उनके प्राणों की विविध अनुभूतियां उनकी कविता में अनायास ही नहीं आ गई हैं लेकिन गाथा में आलंबन अत्यंत सूक्ष्म होने के कारण वैयक्तिकता ही प्रमुख रूप से उभर कर के आई है जिनमें उनके अश्रु, दुख, विरह और वेदना ने ही स्थान पाया है –

धरती जब चादर पीली ओढ़ लेती है
तब बनती है कविता / कविता बनती है
जब दर्द हद से गुजर जाता है
हां कविता तब नहीं बनती
जब इंसान की
संवेदना मर जाती है।

स्त्री की सामाजिक स्थिति के साथ-साथ आर्थिक स्थिति का सजीव वर्णन भी रमेश गोहे की कविताओं के माध्यम से हमें देखने को मिलता है। दरअसल आदिवासी लेखन जीवन का लेखन है यह कल्पना और मनोरंजन का किस्सा नहीं है और न ही आदिवासी औरतें नुमाइश की वस्तु है। किन्तु आज के समय में मीडिया के माध्यम से आदिवासी स्त्रियों को बाजार की नुमाइश की वस्तु बना दी गई है।

सिर पर लकड़ी का गट्ठर लादकर
सुबह-सुबह जब एक के पीछे एक कतार में
निकलती हैं आदिवासी लड़कियां
तो मीडिया का आदमी
मुंह इंधारे फ्लैश चमकाकर
मिचमिचाती आँखों से खींचता है
उनकी अधनंगी तस्वीर

जनजीवन को कविताओं में उकेरने वाले कवि रमेश गोहे शुक्ल प्रेम और प्रकृति के कवि हैं। वे सीधे सरल शब्दों में जादुई बातें कहने के ऐसे माहिर हैं, जो नदी, पहाड़, घाटी से लेकर 'जमीन से जुड़े हुए आदमी' को अपनी कविता में समेट लेते हैं। वास्तव में वे सजग शिल्प के कवि हैं, जो बेहद महीनी से शब्दों को पिरोते हैं। उनकी काव्य भाषा, शिल्प और कहन कविताओं को सतपुड़ा के जंगलों से सीधे जोड़ती है। समाज में प्रेम को लेकर एक असंवेदनशीलता दिखाई देती है जिसे रमेश गोहे बेरंग होती दुनिया में प्रेम को घोल देना चाहते हैं।

पुरुष जो प्रेम से दूर होता है
प्रेम सिखाती हैं उसे स्त्रियाँ
पुरुष जो बेरंग होता है
रंग भरती हैं उसमें स्त्रियाँ

वास्तव में यदि कोई कवि होगा, उसके भीतर प्रेम होगा। प्रेम ही आदमी को कवि बनाता है। कवि की ज़रूरत इसलिए होती है कि जब हवाओं में घृणा भरी हो, वह प्रेम का संगीत बाँटता है। वह सुंदरता से प्रेम करना सिखाता है और बताता है, क्या सुंदर है, क्या नहीं। आधुनिकतावादी समय में प्रेम की भाषा ठीक वैसी नहीं हो सकती थी, जैसी क्लासिकल या रोमांटिक युग में थी। बदली जीवन स्थितियों में प्रेम का अनुभव अलग तरह का होगा, पर उसमें क्लासिक और रोमांटिक संस्कारों की गूँज न हो, यह संभव नहीं है। यदि प्रेम में अनुभव की सच्चाई के साथ एक कलात्मक गहराई मौजूद हो, इन संस्कारों की गूँज होगी जरूर।

ब्राह्मी से देवनागरी

रमेश चन्द्र

संसार की हर लिपि के प्रयोग की अपनी कोई परंपरा होती है, जो उसके विकास की कहानी बताती है। देवनागरी लिपि का विकास ब्राह्मी लिपि से हुआ और इसके प्रयोग की परंपरा एक हजार वर्षों से अधिक पुरानी है, जिसकी एक झलक यहाँ प्रस्तुत करते हैं। यह निर्विवादित है कि वैदिक काल (1500 ई.पू से 800 ई.पू., जिसमें संस्कृत भाषा का प्रयोग होता था) की लिपि ब्राह्मी थी, जिससे यह सिद्ध होता है कि ब्राह्मी लिपि वैदिक काल जितनी पुरानी है और सिंधु घाटी की सभ्यता वैदिककाल की ठीक पूर्ववर्ती होने के कारण इसका संबंध किसी न किसी प्रकार सिंधु घाटी की लिपि से भी था।

वैदिक काल की ब्राह्मी में 13 स्वर और 39 व्यंजन थे। स्वरों में अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ ध्वनियों के प्रतीक 9 मूल स्वर थे तथा ए, ऐ, ओ, औ ध्वनियों के प्रतीक चार संयुक्त स्वर थे। 39 व्यंजनों में क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, ळ, ळह, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, इॅ(यू), र, ल उॅ(व), श, ष, स, ह, विसर्ग (:), जिह्वामूलीय अथवा उपध्मानीय (ˣ) अनुनासिक शामिल थे। परंतु इन सबके लेखिमों के रूप अलग थे। वैदिककालीन ब्राह्मी लिपि के लेखिम निम्नानुसार थे:

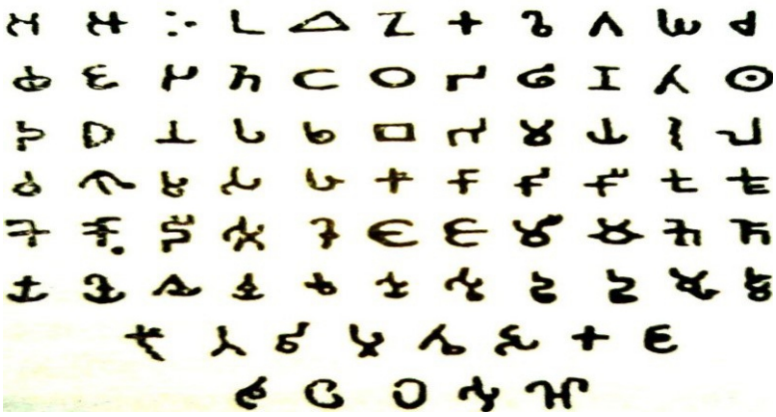

वैदिक काल में वेदों में प्लुत स्वर को प्रकट करने के लिए ह्रस्व या दीर्घ स्वर के बाद '3' का प्रयोग किया जाता था, जिसे दीर्घ कंप कहा जाता था। 'ओ3म्' शब्द में इसका प्रयोग आज भी होता है। वैदिककालीन ब्राह्मी में स्वर, अनुस्वार और कुछ अन्य लेखिम निम्नानुसार होते थे

..	वाक्यांत (वाक्य के अंत में प्रयुक्त) उदात्त	ꣳ	यजुर्वेदीय अनुस्वार 1
		ꣴ	यजुर्वेदीय अनुस्वार 2
(-)	अनुदात्त	ꣵ	यजुर्वेदीय अनुस्वार 3
(॒)	कथकीय अनुदात्त	ꣶ	यजुर्वेदीय अनुस्वार 4
(॑)	स्वरित	ꣷ	यजुर्वेदीय अनुस्वार 5
(॰)	मैत्रायणीय स्वरित	꣸	यजुर्वेदीय अनुस्वार 6
(")	दीर्घ स्वरित	꣹	यजुर्वेदीय अनुस्वार 7
(ॗ)	अथर्ववेदीय जात्य स्वरित	ꣳ	शुक्ल यजुर्वेदीय अनुस्वार
᳚	शुक्ल यजुर्वेदीय जात्य स्वरित	ꣲ	कृष्ण यजुर्वेदीय अनुस्वार
᳛	मैत्रायणीय जात्य स्वरित	ꣳ	कृष्ण यजुर्वेदीय दीर्घ अनुस्वार
᳜	तैत्तिरीय यजुर्वेद से इतर जात्य स्वरित	**अन्य करैक्टर**	
		ᳵ	जिह्वामूलीय
१	सामवेदी स्वर 1	꣸	पुष्पिका अथवा पूर्णकलश
२	सामवेदी स्वर 2	ᳲ	विसर्ग 1
३	सामवेदी स्वर 3	ᳳ	विसर्ग 2
क	सामवेदी स्वर 4	᳴	विसर्ग 3
र	सामवेदी स्वर 5	ᳵ	विसर्ग 4
उ	सामवेदी स्वर 6	ᳶ	विसर्ग 5
꣱	कंप	॰	संक्षेपण चिह्न
१	ह्रस्व कंप	ॐ	ओ३म
३	दीर्घ कंप	ऽ	अवग्रह

इस लिपि का विश्लेषण किया जाए तो यह देखने में आता है कि उस समय की ब्राह्मी लिपि में साधारण स्वर और मिश्रित स्वर दोनों थे, जिनका उच्चारण उनके उच्चारण-स्थान के आधार पर किया जाता था। व्यंजन भी उच्चारण-स्थान के आधार पर वर्गीकृत थे। आधुनिक देवनागरी की भाँति इसके भी क, च, ट, त, प वर्ग थे, जो कंठ, तालु, मूर्धा, दंत और ओष्ठ वर्गों में विभाजित थे। प्रत्येक वर्ग में पाँच व्यंजन होते थे। अंतिम व्यंजन नासिक्य होता था। इसी प्रकार य, र, ल, व, श, ष, स, ह की ध्वनियों के चिह्न भी थे। यह एक ध्वन्यात्मक लिपि थी, जिसमें हर ध्वनि के लिए अलग लिपि-चिह्न तथा हर लिपि-चिह्न के लिए अलग ध्वनि होती थी। वर्गीकरण का यही आधार सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं का भी आधार बना हुआ है।

समय के साथ वैदिक काल की ब्राह्मी लिपि की कुछ ध्वनियों का प्रयोग बंद हो जाने अथवा उनके प्रयोग का स्वरूप बदल जाने के कारण कुछ ध्वनि—प्रतीक विलुप्त हो गए अथवा अपने नए रूप में अंगीकार हुए। इसी प्रकार लौकिक संस्कृत में भी ध्वनियों में कुछ परिवर्तन हो गए थे। ए, ओ की ध्वनियाँ मूल स्वर बन गई थीं और इनका उच्चारण क्रमश: अर्धविवृत अग्र तथा अर्धविवृत पश्च होने लगा। संयुक्त स्वर ऐ, औ की ध्वनियों का उच्चारण अइ, अउ होने लगा। ऋ, ॠ तथा लृ स्वर होने के बावजूद इनका उच्चारण-क्रम क्रमश: रि, री और लि होता था। ळ और ळह की प्रतीक-ध्वनियाँ निकल गईं। इनके अतिरिक्त ह्रस्व ऍ, ऑ की ध्वनियाँ और इनके प्रतीक भी विकसित हो गए थे। अ और आ की ध्वनियाँ विवृत हो गई थीं। ऐ, औ, श, ष ध्वनियों का प्रयोग बंद हो गया था, परंतु बाद में इनका प्रयोग पुन: होने लगा था।

उस समय की ब्राह्मी लिपि वैज्ञानिक होते हुए भी उसमें लिखित संस्कृत मानकीकृत नहीं थी। बाद में 800 ई. पू. से 500 ई.पू. तक लौकिक संस्कृत अपभ्रंश का प्रचलन रहा, जो मानकीकृत भाषा थी। 500 ई.पू. से 1 ई. पू. तक ब्राह्मी लिपि में पालि तथा शौरसेनी (शौरसेनी प्राकृत का प्राचीन रूप) भाषाएँ लिखी जाती थीं। पालि और शौरसेनी प्राकृत मध्य देशीय भाषाएँ थीं। पालि पूर्वी प्रभाव लिए हुए एक प्रकार से आधुनिक हिंदी का प्राचीन रूप ही थी। सन् 1 ई. से 500 ई. तक ब्राह्मी लिपि में प्राकृत (शौरसेनी प्राकृत) लिखी गई।

अशोक के काल (273 ई.पू से 232 ई.पू) में ब्राह्मी लिपि में शौरसेनी प्राकृत लिखी जाती थी। ब्राह्मी लिपि के लेख अशोककालीन भारत में पाए गए हैं। अशोक के काल में ब्राह्मी लिपि का स्वरूप निम्न प्रकार था:

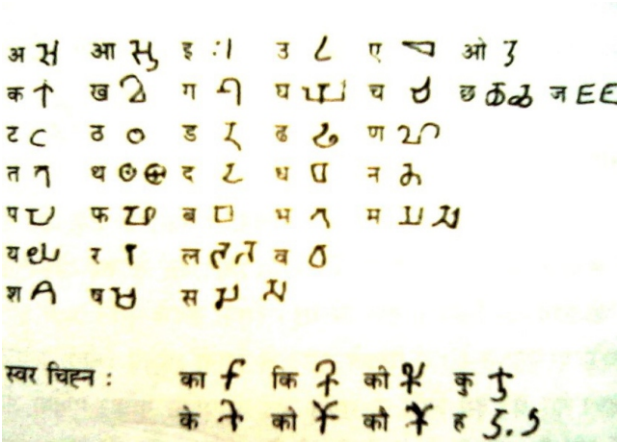

ब्राह्मी का यह रूप आधुनिक देवनागरी के निकट आना शुरू हो गया था, क्योंकि इसके कुछ करैक्टर यथा अ स्वर, उ, ए, ओ और औ स्वरों की मात्राएँ, क, ट, ढ, त, प, म, ष आधुनिक देवनागरी को रूपायित करते हैं। अशोक काल में ब्राह्मी के साथ-साथ खरोष्ठी लिपि का भी प्रचलन था, परंतु देवनागरी के निकट ब्राह्मी ही थी। ब्राह्मी लिपि भी आधुनिक देवनागरी की तरह बाईं से दाईं ओर ही लिखी जाती थी।

जार्ज ब्यूलर का मत है कि ब्राह्मी लिपि में तीसरी शताब्दी ई.पू. से ही 46 मूल करैक्टर थे। इसमें ऐ, ओ, अं, अ: और ङ की उपस्थिति से पता चलता है कि इसे संस्कृत की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाया गया था। ब्राह्मी लिपि के पुराने रूपों की जानकारी

एरण (मध्य प्रदेश) के चौथी शताब्दी ई.पू. के सिक्कों, अशोक के शिलालेखों, भट्टिप्रोलु की द्राविड़ी (ब्राह्मी का ही एक भेद), मौर्य वंश के शासक दशरथ (200 ई.पू.) के अभिलेखों, भारहुत (मध्य प्रदेश) के तोरण के अभिलेखों (पहली शताब्दी ई.पू.) की शुंग लिपि तथा हाथीगुंफा(उदयगिरि, ओडिशा) की कलिंग लिपि से भी मिलती है। उस समय अ और आ ध्वनियों के उच्चारण एक ही स्थान से होते थे। न, ल, स के ध्वनि-प्रतीक दंत्य थे तथा ळ, ळ्, ट, ठ, ड, ढ, ण, ष मूर्धन्य थे। अनुस्वार शुद्ध नासिक्य ध्वनि था अर्थात् संसार का उच्चारण सअंसार की तरह होता था।

बाद में ब्राह्मी लिपि में अनेक परिवर्तन हुए, जिससे प्रादेशिक लिपियों के रूप बने। ब्राह्मी के बाद कुषाणकालीन लिपि, गुप्त लिपि और वाकाटक लिपियाँ अस्तित्व में आईं, जिनके रूप निम्नानुसार थे:

कुषाणकालीन लिपि (40-176 ई.)

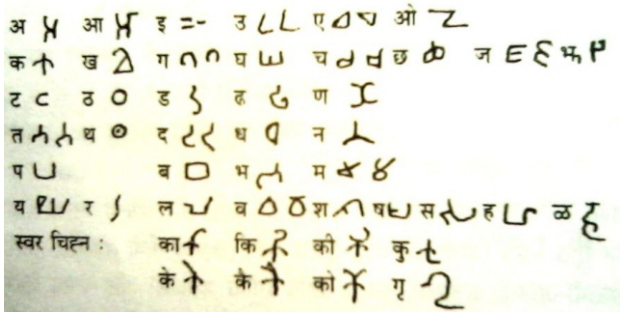

(6) वाकाटक लिपि (280-445 ई.)

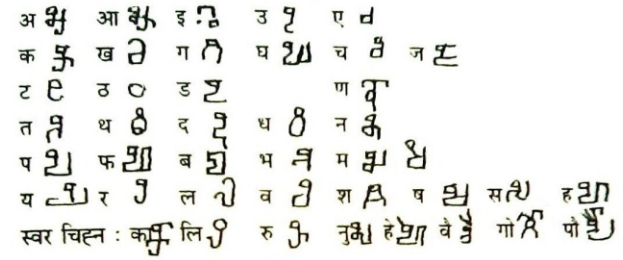

(7) गुप्त लिपि (320-540 ई.)

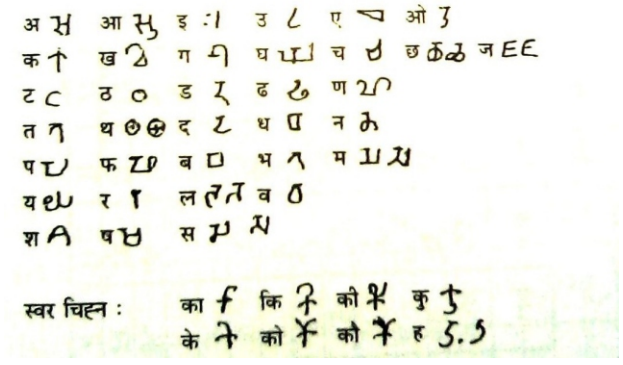

उपरोक्त लिपि चिह्नों से देखने में आता है कि कुषाणकालीन लिपि में अ, त, न, ए, ऐ और ऋ की मात्राएँ भी देवनागरी के निकट आ गई थीं। वाकाटक लिपि में त और द देवनगरी के अधिक निकट आ गए थे।

ब्राह्मी लिपि की मुख्य रूप से दो शाखाएँ हैं – उत्तरी और दक्षिणी। उत्तरी ब्राह्मी के अंतर्गत गुप्त लिपि (चौथी शताब्दी), कुटिल लिपि (छठी से नौवीं शताब्दी), नागरी लिपि (सातवीं-आठवीं शताब्दी), शारदा लिपि (नौवीं शताब्दी) और बंगला लिपि (दसवीं शताब्दी) आती हैं। कुटिल से नागरी लिपि और नागरी से देवनागरी लिपि(दक्षिण में नंदि नागरी), कैथी, गुजराती, राजस्थानी, महाजनी, असमिया, बंगला और उड़िया (अब ओडिया) लिपियों का विकास हुआ। दक्षिणी ब्राह्मी के अंतर्गत तमिल, तेलुगु, कन्नड, ग्रंथ, कलिंग, मध्य देशी, पश्चिमी और मलयालम लिपियाँ आती हैं। समय के साथ गुप्त, कुटिल, शारदा, कैथी, महाजनी, लंडा आदि लिपियाँ समाप्त हो गईं और देवनागरी लिपि का विकास आरंभ हो गया। दसवीं शताब्दी में नागरी लिपि के कुछ वर्णों पर शिरोरेखाएँ लगाई जाने लगीं और बारहवीं शताब्दी तक इसका रूप वर्तमान देवनागरी जैसा हो गया।

ब्राह्मी से गुप्त व कुटिल लिपियों का तथा बाद में दसवीं से बीसवीं शताब्दी तक देवनागरी लिपि का क्रमिक विकास निम्न प्रकार हुआ। इस विकास से अनके मध्य परस्पर संबंध की जानकारी मिलती है:

टिप्पणी - उपर्युक्त तालिका में देवनागरी के केवल उन्हीं वर्णों के रूप परिवर्तन दर्शाए गए हैं, जो दसवी शताब्दी से चले आ रहे हैं।

ब्राह्मी के देवनागरी लिपि में परिणत होने के काल के व्यतिरेकी विश्लेषण से ज्ञात होता है कि ब्राह्मी में अ के प्र रूप का अस्तित्व दसवीं शताब्दी में ही बीसवीं शताब्दी के प्र जैसा होना शुरू हो गया था। चौदहवीं शताब्दी में यह बीसवीं शताब्दी के प्र जैसा ही हो गया था। यह भी ज्ञात होता है कि ब्राह्मी से विकसित होकर 'द' 10वीं सदी में; उ, ऊ, ए, ऐ, क, ख, ग, ज, ट, ढ, त, न, प, फ, म, ल, श, ष और स 11वीं सदी में; प्रा, ऊ, छ, ञ, ठ, ड, य, र, व और ह 12वीं सदी में; इ, ई और घ 13वीं सदी में; ध 14वीं सदी में; ब, भ और ॐ प्रौ 15वीं सदी में तथा च और थ 16वीं सदी में ही बीसवीं सदी जैसे हो गए थे। ब्राह्मी के पूर्व कुछ कैरेक्टरों का ही प्रयोग देवनागरी में आज भी होता है और कुछ शासकीय प्रयासों के फलस्वरूप हुए परिवर्तनों को छोड़कर उनके रूप वैसे के वैसे बने हुए हैं वर्ष 1972 अर्थात् बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत सरकार के केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने शासकीय प्रयासों से प्र, प्रा, प्रो, प्रौ, रव, ऋ, रा, ध्र, भ, की जगह क्रमश: अ, आ, ओ, औ, ख, झ, ण, ध, भ रूप निर्धारित कर दिए, हालांकि इनमें से ख, ध और भ का प्रयोग पुराने रूपों में भी हो रहा है। निदेशालय ने इन बदलावों के अतिरिक्त देवनागरी लिपि में अन्य लिपियों के कुछ वर्ण भी शामिल कर लिए और देवनागरी लिपि के लेखिमों के संबंध में कुछ अन्य नियम भी निर्धारित किए, जिनका समग्र विवरण निदेशालय द्वारा प्रकाशित पुस्तिका "देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी का मानकीकरण" में दिया गया है। ब्राह्मी की स्वर और व्यंजनों के वर्गीकरण की व्यवस्था भी अपने परिवर्तित रूप में देवनागरी और अन्य भारतीय लिपियों में समाहित हो गई, जिस कारण सभी भारतीय लिपियों की ध्वानिक प्रकृति परस्पर मिलते-जुलते रूप में विकसित हुई।

अब देवनागरी के प्रयोग की बात करते हैं। देवनागरी का सर्वप्रथम प्रयोग सातवीं-आठवीं शताब्दी में गुजरात नरेश जय भट्ट के एक शिलालेख में मिलता है। इसके उपरांत राष्ट्रकूट राजाओं द्वारा आठवीं शताब्दी में तथा बड़ौदा के ध्रुवराज द्वारा नौंवी शताब्दी में इसका व्यवहार मिलता है1 ये प्रमाण देवनागरी के दक्षिण भारत में प्रयोग की प्राचीनता सूचित करते हैं। इस युग की नागरी लिपि अत्यंत अलंकृत थी और सम्राट का हस्ताक्षर तो प्राचीन नागरी का उत्कृष्ट नमूना है। इस प्रकार देवनागरी का प्रयोग उत्तर और दक्षिण दोनों दिशाओं में सातवीं शताब्दी में आरंभ हुआ। दसवीं शताब्दी से यह पंजाब से बंगाल और नेपाल से केरल तथा श्रीलंका तक व्यापक प्रयोग में आने लगी थी। ग्यारहवीं शताब्दी से देवनागरी का रूप पूर्ण और स्थिर होने लगा और इसकी लोकप्रियता बढ़ती चली गई। यहाँ तक कि मुगल आक्रमणकारी गजनवी ने अपने सिक्कों पर इसका प्रयोग किया। उसने सन् 1027-28 में लाहौर की टकसाल में जो सिक्के बनवाए थे, उनके एक ओर देवनागरी लिपि में संस्कृत भाषा में 'प्रत्यक्तमेक मुहम्मद अवार नृपति महमूद' तथा किनारे पर 'अव्याक्ती उनमें अये टंकं हत महमूदपुर संवती 418' लिखा है। ताड़-पत्रों पर देवनागरी में लिखे इस काल के अनेक ग्रंथ गुजरात, राजस्थान तथा महाराष्ट्र से प्राप्त हुए हैं।

मुगल काल में यद्यपि देवनागरी का राजकीय प्रश्रय छिन गया था, फिर भी जन-जीवन में देवनागरी प्रचलित रही और विकसित होती रही। इसमें अवधी, राजस्थानी, ब्रजभाषा, मैथिली आदि में विपुल साहित्य भी लिखा गया। इसके अतिरिक्त शेरशाह ने भी इसका अपने सिक्कों पर प्रयोग किया। उसके सिक्कों पर देवनागरी में 'श्री शेरशाह' और 'ओम्' लिखे होते थे। अंग्रेजी शासनकाल में भी ईसाई मिशनरियों ने भी अपने धर्म के प्रचार के लिए देवनागरी सीखी, जिस कारण इसे सरकारी संरक्षण भी प्राप्त हो गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय संविधान सभा ने हिंदी को राष्ट्रभाषा और देवनागरी को राष्ट्रलिपि स्वीकार किया।

इस प्रकार देवनागरी के उदभव और विकास की कहानी एक हजार वर्षों से अधिक पुरानी है। ब्राह्मी से इसका उदभव आरंभ होने के बाद इसने अशोक काल, कुषाण काल, वाकाटक काल, गुप्त काल में समय-समय पर कई बार अपने रूप बदले और अंतत: बारहवीं सदी के आस-पास इसके अधिकांश वर्णों का रूप स्थिर हो गया। गुप्त काल के बाद भी इसने फारसी, अरबी, रोमन लिपियों से संघर्ष किया। कभी यह अपने संघष्र में पराजित होती दिखाई दी तो कभी इसके उत्थान का काल भी नजर आने लगा। अंतत: स्वतंत्र भारत की राजभाषा हिंदी की राजकीय लिपि के रूप में स्वीकृति पाकर देवनागरी ने अनंत काल तक का सफर सुनिश्चित कर लिया।

संदर्भ-सूची

1. राष्ट्र संगठन में देवनागरी का योगदान, भगवानदीन मिश्र, भाषा, जून 1963, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली।
2. भातरीय पुरालिपि शास्त्र (1966), जॉर्ज ब्यूलर, बनारसी दास प्रकाशन, दिल्ली।
3. नागरी लिपि और हिंदी वर्तनी (1973), डॉ. चौधरी, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना।
4. विश्व की मूल लिपि ब्राह्मी (1975), प्रेम सागर जैन, इंदौर।
5. देवनागरी लिपि : वैज्ञानिकता और उपयोगिता, डॉ. श्रीधर मिश्र, राजभाषा भारती, जुलाई-सितंबर, 1986
6. हिंदी भाषा की लिपि संरचना(1993), भोलानाथ तिवारी, साहित्य सहकार, दिल्ली।
7. भारतीय प्राचीन लिपिमाला (1993), गौरीशंकर हीराचंद ओझा, मुंशी राम मनोहर लाल प्रा. लि., दिल्ली।
8. देवनागरी लिपि और राजभाषा हिंदी (2006), रमेश चन्द्र, कल्याणी शिक्षा परिषद्, दिल्ली।
9. देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी का मानकीकरण (2019), केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली।
10. नागरी लिपि की वैज्ञानिकता, संपादक डॉ. मलिक मुहम्मद और डॉ. गंगा प्रसाद विमल, नागरी लिपि परिषद्, नई दिल्ली

भाषा की समृद्धि में कहानी की भूमिका

बसंत राघव

भाषा की समृद्धि में कहानी की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कहानी समाज का व्यापक विश्लेषण करती है। अन्य विधाओं के अपेक्षाकृत कहानी अधिक ग्राह्य होने के कारण अधिक पढ़ी और याद रखी जाती है। भारत विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों का देश है और हिंदी हमारी मातृभाषा है, हिंदी भाषा ही हमें एकता के धागे में पिरोती है, इसलिए हिंदी की समृद्धि के लिए कहानी की भाषा बहुत ज्यादा व्यावहारिक और सरल होनी चाहिए।कथाकारों को आंचलिक शब्दों का उपयोग कुछ इस तरह करना चाहिए कि वह स्वयं अर्थ का रसास्वादन कराने में समर्थ हो सके। मुहावरों, कहावतों से भी भाषा मंजती, सजती और संवरती है। कहानी का उद्देश्य स्पष्ट और जनसरोकारी होना चाहिए। रूमानी प्रेम या देहयष्टि अथवा मांसलता को केंद्र में रखकर लिखी गई कहानियां हमारा मंनोरंजन तो करती हैं, परन्तु ऐसी कहानियों से समाज को भला क्या लाभ? प्रेमचंद की जनसरोकार से जुड़ी कहानियां आज भी प्रासंगिक क्यों हैं? इस पर आज के कहानीकारों को गंभीरता से विचार करना चाहिए। जो समाज को नई ऊर्जा और नई सोच दे ,जो मानवीय संवेदनाओं को उकेरे ,वैसी ही कहानियाँ हमे सृजित करनी चाहिए। जो समाज को समाज से जोड़े, जो संस्कृतियों में समन्वय स्थापित करे, जो वृहद पाठक वर्ग को अपनी ओर आकर्षित करे, ऐसी ही भाषा से सृजित कहानियों की आज दरकार है। कहानी मानवीय संबंधों की भीतरी जांच पड़ताल का जरिया है, वह समय -समाज दोनों को एक साथ परिभाषित करने में समर्थ होती है, इसलिए भाषा के क्षेत्र में कहानीकार की जवाबदेही अपेक्षाकृत और अधिक बढ़ जाती है।

अपने समय ,समाज और राजनीति के साथ मानवीय संबंधों के ताने - बाने को समझने के लिए कहानी एक सशक्त माध्यम है। कहानी की भाषा वर्तमान समय की बोलचाल के शब्दों, और वैज्ञानिक शब्दावली एवं टेक्नोलॉजी के वाक्यांशों की भी मांग करती है। कहानीकार को अपने विषय एवं पात्रों के अनुरूप भाषा संरचना पर भी काम करना होता है जो कि हिंदी भाषा की समृद्धि के लिए जरूरी है। अभिव्यक्ति की क्षमता शब्दों में निहित होती है और वर्तमान समय को दिखाने के लिए इनकी जरूरत कहानीकार के साथ साथ पाठक भी शिद्दत से महसूस करता है।कठिन शब्द, उबाऊ विषय एवं बोझिल भाषा से पाठक वर्ग बिदक जाते हैं, इसपर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। भाषा की सुघड़ता, उसकी सहजता और प्रवाहमयता में है, सरल भाषा का प्रचार - प्रसार वृहद होता है, संस्कृत भाषा दुर्गम -दुरूह कठिन क्लिष्ट और अभिजात्य वर्ग की भाषा होने के कारण ही सिमटती गई और प्रचलन से बाहर होती चली गई।उसकी जगह हिंदी और इतर भाषाओं का विस्तार होता चला गया। इसलिए कहानी की भाषा परिस्थिति अनुकूल सरल , सहज होनी चाहिए। भाषा की समृद्धि में कथाकार की भी विशिष्ट भूमिका होती है। कहानी लेखक अपने भाषा कौशल के द्वारा पाठकों की याददाश्त को मजबूती प्रदान करता है। उनके ज्ञान और बुध्दि को विस्तारित ही नहीं करता बल्कि संवाद कला में भी उन्हें दक्ष करता है। कहानी अपने साथ अपनी भाषा को भी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित करती है। हिंदी में लिखी जाने वाली कहानियां इन सभी विशेषताओं से लैस होकर भाषा की समृद्धि में अपना महत्वपूर्ण योगदान देती रहेंगी, ऐसी मेरी स्पष्ट मान्यता है।

एक बात और रखना चाहूंगा कि भारत की पारंपरिक कहानियों एवं क्षेत्रीय लोककथाओं को भी हिंदी भाषा में पुनःप्रकाशित करने की जरूरत है, क्योंकि इनकी जड़ें बहुत गहरी हैं। ये मनुष्य जीवन के अंतःसंबंधों एवं जीवन मूल्यों को समझाने एवं वृहद समाज से हमें जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। अनुभवजनित कहानियां समाजोन्मुख होती हैं , उनका स्थायी महत्व भी होता है। उनकी शैली लोगों को आकृष्ट करती है ,प्रभावित करती है, इसलिए पाठकों को लम्बे समय तक कहानी याद रहती है। काल्पनिक ,वायवीय या आभासी संबंधों को लेकर लिखी गई कहानियां अल्पकालिक और क्षणिक प्रभाव छोड़ती हैं। कहानी के कारण भी हमारी हिंदी की लोकप्रियता दुनिया भर में बढ़ी है। हिंदी कहानियां पढ़ने के लिए लोग हिंदी सीख रहे हैं। वैसे भी विश्व में सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषाओं में हिन्दी तीसरे स्थान पर है।

मार्शल कोहेन ने कहा है "भाषा मनुष्य के भाव विनिमय का साधन है और भाषा ही मनुष्य और पशुता के बीच पार्थक्य रेखा खींचती है।" इसलिये भाषा मनुष्य के निर्माण में और संस्कृति की जड़ में अहम भूमिका निभाती है।जहाँ तक हिंदी का प्रश्न है हिंदी को लोकप्रिय बनाने में भाषा का स्थान महत्वपूर्ण है। क्योंकि भाषा दादी नानी की कहानी से जुड़ी है।कहानी का प्रारंभ दादी-नानी से होता है और प्रतिदिन हमको उससे शिक्षण मिलता है। यद्यपि उसमें गीत का भी हाथ होता है लेकिन जहां तक कहानी का प्रश्न है उसमें एक रोचकता होती है, एक शैली होती है, एक प्रवाह होता है। सबसे पहले बचपन में दादी नानी की कहानी को सुनना आरंभ करते हैं। यद्यपि गीत का भी प्रवाह होता है जो कि ग्राहय है लेकिन इससे ज्यादा भूमिका कहानी की होती है, क्योंकि कहानी में शब्दों का, वाक्यों का प्रयोग, बोलचाल की भाषा सुन कर पढ़ कर उसे बोलचाल में हम उतारते हैं , इसलिए कहानी की भूमिका कहीं ज्यादा होती है। भाषा के निर्माण में या हिंदी को गढ़ने में प्रेमचंद का जो स्थान है वह अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने साढ़े तीन सौ कहानियां ,पन्द्रह सोलह उपन्यास, दो अनुवाद की किताब, तीन बाल कहानियां लिखी हैं। प्रेमचंद को पढ़ने के लिए लोगों ने हिंदी सीखी।यहाँ यह उल्लेखनीय है कि शरदचंद्र और रवींद्रनाथ की रचनाओं को पढ़ने के लिए लोगों ने बांग्ला भाषा सीखी। यह कहानी का ही योगदान है। इसके बाद जो रचनाकार आए उनमें फणीश्वरनाथ रेणु बहुपठित हुए। चतुरसेन शास्त्री जिन्होंने करीबन साढ़े चार सौ कहानियां लिखी हैं और उनकी ये कहानियां इतनी लोकप्रिय हुई हैं कि उन्हें पढ़ने के लिए लोगों ने हिंदी सीखी। ठीक है कि संगीत के लिए गीत आवश्यक है लेकिन कोई भी फिल्म का निर्माण हो या फिर टेलीविजन सीरियल, धारावाहिक बनाना हो, उसके लिए कहानी की आवश्यकता होती है।कहानी से ही पटकथा लिखी जाती है।आज आप जानते हैं कि किसी को लोकप्रिय बनाने में, मनोरंजन के साधन के रूप में, उपदेश, संदेश या प्रेरणा के रूप में फिल्मों का कितना बड़ा योगदान है। इसका एक उदाहरण यह है कि उपकृत साहू बनारी ग्राम का रहने वाला फिल्म 'कर्तव्य' देखता है जिसमें कि धमेंद्र फारेस्ट रेंजर की भूमिका में है। फिल्म से प्रभावित उपकृत साहू परीक्षा देता है और फारेस्ट रेंजर बन जाता है । डी. एफ.ओ. की परीक्षा देता है वहां भी वह सलेक्ट हो जाता है और बड़े पद पर उसे पोस्टिंग मिल जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि अगर फिल्मों से प्रेरणा मिलती है तो उस प्रेरणा के लिए कहानी आवश्यक है , क्योंकि बिना कथा के फिल्म नहीं बन सकती बिना कथा के कोई सीरियल, धारावाहिक नहीं बन सकती । इस तरह कथा की भूमिका होती है। हिन्दी को समृद्ध करने के लिए फणीश्वरनाथ रेणु और तमाम वो कहानीकार जो कहानी लिखे वे सभी महत्वपूर्ण काम कर गए। 'उसने कहा था' कहानी जो अत्यंत चर्चित हुई। उस पर फिल्म भी बनी। प्रेमचंद की रचना सदगति पर भी फिल्म बनी।उनके उपन्यास गबन ,गोदान,शतरंज का खिलाड़ी, हीरा मोती पर भी फिल्म बनी। उपन्यास कहानी का वृहद रूप है।इस तरह देखा जाए तो साहित्यिक कहानी और उपन्यास पर बहुत फिल्में बनी हैं। चँदामामा बाल साहित्य की बात करें तो चँदामामा पत्रिका की कहानी कितनी लोकप्रिय हुई। इसमें विक्रम और बेताल की लोकप्रियता सबसे ज्यादा है। आज भी गीत को सबलोग नहीं पढ़ पाते न ही समझ पाते हैं, लेकिन कहानी को सब लोग पढ़ लेते हैं और समझ भी लेते हैं और उससे हिंदी का संस्कार विकसित होता है । इस तरह कहानी के बिना हिंदी साहित्य की कल्पना नहीं की जा सकती, क्योंकि कथा का अर्थ ही है जो कहा जाय। सामान्य बोलचाल, सामान्य संवाद भी एक कथा ही है। हिंदी की समृद्धि में कथा की भूमिका गीतों से कहीं ज्यादा है।

हिंदी के प्रमुख कथाकारों में प्रेमचंद, चतुरसेन शास्त्री, जयशंकर प्रसाद, सुदर्शन, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', यशपाल, जैनेंद्र कुमार, भीष्म साहनी, अमृता प्रीतम, अज्ञेय, यशपाल, फणीश्वरनाथ रेणु, राजेन्द्र यादव, अमरकांत, उषा प्रियंवदा, मन्नु भंडारी, ज्ञानरंजन, उदय प्रकाश, भगवती प्रसाद वाजपेयी,मोहन राकेश,मन्नू भण्डरी, धर्मवीर भारती, महादेवी वर्मा, गिरिराज किशोर, धीरेन्द् अस्थाना, शिवप्रसाद सिंह,रामदरश मिश्र,महेन्द्र वशिष्ठ,अमरेन्द्र मिश्र,राजेन्द्र उपाध्याय, शीतांशु भारद्वाज, दूधनाथ सिंह, मालती जोशी, ओमप्रकाश बाल्मीकि, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, माधवराव सप्रे, निर्मल वर्मा आदि प्रमुख हैं, जिन्होंने कहानी के क्षेत्र में हिंदी भाषा को समृद्ध किया।

वर्तमान में राजकमल चौधरी, गंगाप्रसाद विमल, दूधनाथ सिंह,प्रभात त्रिपाठी, संजीव, जया जादवानी, मनीष वैद्य, रमेश शर्मा, डॉ. देवधर महंत, हंसा दीप, शिव कुमार शिव, डॉ. निरुपमा राय, शायान शफी कुरेशी, शैल अग्रवाल, रंजना जायसवाल, प्रगति गुप्ता, जया आनंद, नीलम कुलश्रेष्ठ, डाँ.जे.के डागर, श्याम बिहारी महतो भी खूब लिख रहे हैं। इनकी मौलिक प्रतिभा , इनकी सृजनधर्मिता निश्चय ही हिंदी भाषा की समृद्धि में अपना अपूर्व योगदान दे रही है। इन सारी चर्चाओं के माध्यम से हम इस बिंदु पर पहुंचते हैं कि भाषा की समृद्धि में कहानी का महत्वपूर्ण योगदान है, उसकी भूमिका महत्वपूर्ण है।

सपने और सफलता

सीताराम गुप्ता

कहा गया है कि इस सृष्टि की रचना प्रभु की इच्छा मात्र से हो गई। सोऽकामयत। बहुस्यां प्रजायेयेति। उस परमात्मा ने कामना की कि मैं एक से अनेक या बहुत हो जाऊँ। प्रभु ने चाहा, कल्पना की और सृष्टि का सृजन प्रारंभ हो गया। ऋग्वेद में कहा गया है कि प्रारंभ में न अस्तित्व था और न ही अनस्तित्व। संपूर्ण ब्रह्माण्ड एक अदृश्य ऊर्जा था। बहुत पहले सचमुच कुछ नहीं था। एक शून्य से, एक निर्वात से इस सृष्टि की उत्पत्ति प्रारंभ हुई ऐसा वेदों में कहा गया है। यदि हम साधारण शब्दों में कहें तो हमारे कल्पना रूपी ईश्वर की कल्पना मात्र से ही यह सृष्टि अस्तित्व में आई। कल्पना जिसे सपना भी कह सकते हैं उसका बहुत महत्व है। ईश्वर भी कल्पनाशील अथवा स्वप्नदर्शी था और है और मनुष्य भी कल्पनाशील अथवा स्वप्नदर्शी है और रहेगा। यह सारा हमारी संसार कल्पनाशीलता, स्वप्नदर्शिता अथवा हमारे मनोभावों की चित्रवीथी है। सामूहिक समग्र कल्पनाशीलता, स्वप्नदर्शिता अथवा चिंतन का ही परिणाम है यह दृश्य जगत। जीवन का हर क्षेत्र प्रभावित है इससे। भौतिक समृद्धि हो अथवा सामाजिक व्यवस्था सभी कुछ मनुष्य के स्वयं के तथा समाज के सामूहिक सपनों, विचारों व कर्मों का ही प्रतिफल है।

पश्चिमी देशों में हर साल 11 मार्च को 'ड्रीम डे' अथवा 'स्वप्न दिवस' मनाया जाता है। हर साल 'ड्रीम डे' अथवा 'स्वप्न दिवस' मनाने का क्या औचित्य हो सकता है? अधिकांश व्यक्ति प्रायः ये कहते हैं कि शेख़ चिल्ली मत बनो, हवाई किले मत बनाओ या दिन में सपने देखना छोड़ दो क्योंकि ये सपने कभी पूरे नहीं होते लेकिन आज ये बात सिद्ध हो चुकी है कि जीवन में आगे बढ़ने या कुछ बेहतर परिणाम पाने के लिए दिन में सपने देखना बहुत ज़रूरी है। हमारा भविष्य हमारे सपनों के अनुरूप ही आकार ग्रहण करता है। आज दुनिया में जो लोग भी सफलता के ऊँचे पायदानों पर पहुँचे हैं वे अपने सपनों की बदौलत ही ऐसा कर पाए हैं और जो लोग किसी भी क्षेत्र में सबसे नीचे के पायदान से भी नीचे हैं वे भी अपने कमज़ोर व विकृत सपनों के कारण ही वहाँ हैं। जीवन में सफलता अथवा असफलता की इसी अवधारणा या वास्तविकता से लोगों को अवगत करवाने के लिए ही हर साल 11 मार्च को 'ड्रीम डे' अथवा 'स्वप्न दिवस' मनाया जाता है।

प्रश्न उठता है कि हम जिस सपने की बात कर रहे हैं वो सपना क्या होता है? क्या हम सोते समय नींद में आने वाले सपनों की बात कर रहे हैं? नहीं, हम एक दूसरे ही सपने की बात कर रहे हैं जो नींद में नहीं खुली आँखों से देखा जाता है। डॉक्टर अब्दुल कलाम साहब ने कहा है कि सपने वे नहीं होते जो हम सोते वक़्त नींद में देखते हैं अपितु सपने वे होते हैं जो हमें सोने नहीं देते। वास्तव में जीवन में कुछ करने या पाने की जो उत्कट इच्छा, बेचैनी या तड़प होती है वो व्यक्ति का सपना ही होता है। ऐसे सपने नींद में नहीं जागते हुए और सोच-समझकर देखे जाते हैं। रात को नींद में हम सपने देखते नहीं अपितु वे स्वयं हमारी नींद में आ उपस्थित होते हैं जिन्हें हम प्रायः भूल जाते हैं और वे हमें बेचैन

भी नहीं करते। जो सही मायनों में हमें बेचैन कर दे, हमें सोने न दे व हमें आगे बढ़ने के लिए विवश कर दे वही एक सार्थक सपना है और ऐसे सपने पाले जाते हैं। सपना पालने के बाद उसकी देख-भाल व परवरिश की जाती है ताकि वो अपने अंजाम तक पहुँच सके।

अमेरिका में 'ड्रीम डे' अथवा 'स्वप्न दिवस' के अवसर पर जार्ज वाशिंगटन, अब्राहम लिंकन, मार्टिन लूथर किंग, बराक ओबामा जैसे उन सफलतम लोगों को याद किया जाता है जिन्होंने न केवल महान सपने पाले अपितु उन्हें सच कर दिखाया। सपने देखना एक कला ही नहीं अपितु एक उत्कृष्ट कला है। जिस किसी ने भी सही सपने चुनने और देखने की कला विकसित की है वही संसार में सबसे ऊपर पहुँच सका है। ऊपर पहुँचने का अर्थ केवल धन-दौलत कमाने तक सीमित नहीं है अपितु जीवन के हर क्षेत्र में उन्नति व विकास से है। अच्छा भौतिक स्वास्थ्य, आध्यात्मिक उन्नति अथवा खेलों में उत्कृष्ट प्रदर्शन की इच्छा भी अच्छे सपने हो सकते हैं। खेलों के क्षेत्र में तो विशेष रूप से अनेकानेक खिलाड़ियों ने अपने सपनों के बल पर ही उत्कृष्टता अथवा विजय प्राप्त की है ऐसे अनेक उदाहरण मिलते है।

एक उदाहरण विल्मा रुडोल्फ़ का है। विल्मा रुडोल्फ एक अश्वेत अमेरिकी बालिका थी जिसे चार वर्ष की आयु में डबल निमोनिया और काला बुख़ार होने से पोलिया हो गया और फलस्वरूप उसे पैरों में ब्रेस पहननी पड़ी। विल्मा रुडोल्फ़ ग्यारह वर्ष की उम्र तक चल फिर भी नहीं सकती थी लेकिन उसने एक सपना पाल रखा था कि उसे दुनिया की सबसे तेज़ धाविका बनना है। डॉक्टर के मना करने के बावजूद विल्मा रुडोल्फ ने अपने पैरों की ब्रेस उतार फेंकी और स्वयं को मानसिक रूप से तैयार कर अभ्यास में जुट गई। अपने सपने को मन में प्रगाढ़ किए हुए वह निरंतर अभ्यास करती रही। उसने अपने आत्मविश्वास को इतना ऊँचा कर लिया कि असंभव सी लगने वाली बात पूरी कर दिखलाई। वर्ष 1960 में इटली की राजधानी रोम में 25 अगस्त से 11 सितंबर तक होने वाले ओलंपिक खेलों वह इतनी तेज दौड़ी, इतनी तेज दौड़ी कि उस वर्ष के ओलंपिक मुक़ाबलों में तीन स्वर्ण पदक जीत कर दुनिया की सबसे तेज़ धाविका बन गई। सफलता के लिए पुरुषार्थ अथवा अभ्यास करने की प्रेरणा उसे कहाँ से मिली? स्पष्ट है अपने अंदर पल रहे सपने से जिसने विषम परिस्थितियों के बावजूद उसे निरंतर अभ्यास करने के लिए प्रेरित किया।

जो लोग अपेक्षित ऊँचाइयों तक नहीं पहुँच पाते ज़रूर उनके सपनों व उन्हें देखने के तरीक़ों में कोई कमी रहती होगी। प्रश्न उठता है कि सही सपनों का चुनाव कैसे करें और कैसे उन्हें देखें? वास्तविकता ये है कि हमारा मन कभी चैन से नहीं बैठता। उसमें निरंतर विचार उत्पन्न होते रहते हैं। एक विचार जाता है तो दूसरा आ जाता है। हर घंटे सैकड़ों विचार आते हैं और नष्ट हो जाते हैं। ये विचार हमारी इच्छाओं के वशीभूत होकर ही उठते हैं। ये हमारे सपने ही होते हैं। सपनों का प्रारंभिक स्वरूप हमारे विचारों में ही छुपा रहता है। हमारे अवचेतन व अचेतन मन में विचारों की कमी नहीं होती। पूरे जीवन के अच्छे व बुरे सभी अनुभव इनमें संग्रहित रहते हैं। ये अनुभव ही हमारे विचारों के मूल में होते हैं। इन असंख्य विचारों में से जो विचार जीवन या भौतिक जगत में वास्तविकता ग्रहण कर लेता है वो एक सपने की पूर्णता ही होती है। कई बार हमें अपने इस सपने की जानकारी भी नहीं होती। सपने की जानकारी न होने से सपने की जानकारी होना बेहतर ही नहीं बेहतरीन है।

संभावना कम नहीं रहती है कि ग़लत विचार हमारा सपना बनकर हमें तबाह कर डाले। अतः नींद में नहीं अपितु खुली आँखों से सोच-समझकर सपने देखना ही श्रेयस्कर है। अब प्रश्न उठता है कि सही विचारों अथवा सपनों के चयन के लिए क्या किया जाए? जहाँ तक विचारों के सही होने का प्रश्न है सही चिचार केवल सकारात्मक दृष्टिकोण द्वारा ही संभव हैं। यह स्वयं में एक अलग विस्तृत विषय है। यहाँ हम सही विचारों के चयन की बात करेंगे। सही विचारों के चयन के लिए विचारों को देखकर उनका विश्लेषण करना और उनमें से किसी अच्छे उपयोगी विचार का चयन करना अपेक्षित है। जब हम रोज़ मर्रा की सामान्य अवस्था में होते हैं तो न तो विचारों को सही-सही देखना ही संभव है और न उनका विश्लेषण करना ही। इसके लिए मस्तिष्क की शांत-स्थिर अवस्था अपेक्षित है। ध्यान द्वारा यह स्थिति प्राप्त की जा सकती है। ध्यान योग का एक अंग है। सही सपने के चुनाव व उसकी पूर्णता में योग के आंतरिक अंगों विशेष रूप से प्रत्याहार, धारणा व ध्यान का महत्त्वपूर्ण योगदान अनिवार्य है। शवासन अथवा योगनिद्रा से भी इसमें सहायता ली जा सकती है।

मस्तिष्क की चंचलता कम हो जाने पर जब हम शांत-स्थिर हो जाते हैं तो उस अवस्था में विचारों को देखना और उनका विश्लेषण करना संभव हो जाता है। योगनिद्रा अथवा शवासन ऐसे ही अभ्यास है जिसके द्वारा हम मन पर नियंत्रण द्वारा ग़लत विचारों से मुक्त होकर सही विचारों को प्रभावी बना सकते हैं व उन्हें एक सपने के रूप में विकसित कर सकते हैं। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है योग द्वारा निद्रा की स्थिति प्राप्त करना ही योगनिद्रा है। योगसूत्र में कहा गया है 'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः' अर्थात् चित्तवृत्तियों अथवा मन के क्रियाकलापों पर नियंत्रण ही योग है। योगनिद्रा "नो थॉट स्टेट" जैसी अवस्था है। शवासन भी शव के समान निश्चल व विचार शून्य हो जाने की प्रक्रिया है। सुषुप्ति और जाग्रतावस्था की निद्रा में अंतर होता है। सुषुप्तावस्था की निद्रा में मन हमारे नियंत्रण में नहीं होता जबकि जाग्रतावस्था की निद्रा में मन हमारे पूर्ण नियंत्रण में होता है। मन पर

नियंत्रण का अर्थ है हम मन को अपने लाभ के लिए प्रयोग कर सकते हैं। इसी स्थिति में अपनी इच्छाओं और संकल्पों को मन में फीड कर सकते हैं। मन की सकारात्मक उपयोगी विचारों के लिए कंडीशनिंग की जा सकती है। यह गहन निद्रा में प्रवेश करने से ठीक पहले की अवस्था है।

इस अवस्था को हम चाहे जो नाम दें उस समय हमें चाहिए कि हम अनुपयोगी नकारात्मक विचारों पर ध्यान न देकर केवल उपयोगी सकारात्मक उदात्त विचारों पर संपूर्ण ध्यान केंद्रित कर लें। हम जो चाहते हैं मन ही मन उसे दोहराएँ। उसी विचार के भाव को पूर्ण एकाग्रता के साथ मन में लाएँ। उस भाव को अपनी कल्पना में चित्र के रूप में देखें। कई व्यक्ति इस प्रयास में पूरी तरह से सफल नहीं होते। हम सब सपने तो देखते हैं लेकिन एक सपना देखना भूल जाते हैं और वो सपना है अपने सपनों को सच होने के विश्वास का सपना। ढेर सारे सपने देखिए और ये सपना भी ज़रूर देखिए कि मेरे सारे सपने पूरे हो रहे हैं। पहले सपने को हम संकल्प कह सकते हैं और दूसरे को विश्वास। संकल्प और उनके पूरा होने का दृढ़ विश्वास ही जीवन में आशातीत सफलता की कुंजी है। अपने विचार, भाव या सपने को चित्र के रूप में देखना सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण व फलदायी होता है। हम पूरे घटनाक्रम को एक फिल्म की तरह भी देख सकते हैं।

आपका जो सपना है उसे एक फिल्म की तरह अथवा उस सपने की परिणति को एक चित्र की तरह देखें। उस फिल्म अथवा चित्र से उतना ही प्रसन्न होने का प्रयास करें जितना वास्तविक सफलता की अवस्था में प्रसन्न होते हैं। आपकी फिल्म अथवा चित्र जितना अधिक स्पष्ट होगा, आपका रोमांच अथवा आपकी प्रसन्नतानुभूति जितनी अधिक होगी सपने की पूर्णता अथवा सफलता उतनी ही अधिक निश्चित हो जाएगी। यही नहीं अपनी ही नहीं किसी की भी सफलता हो उससे हमेशा आनंदित हों। यह पूरी प्रक्रिया हमारे मस्तिष्क को अत्यंत सक्रिय व उद्वेलित कर देती है। मस्तिष्क की कोशिकाएँ हमारे सपने के अनुरूप अपेक्षित परिस्थितियों का निर्माण करने में जुट जाती हैं और तब तक न तो स्वयं चैन से बैठती हैं और न हमें चैन से बैठने देती हैं जब तक कि वो सपना पूरा नहीं हो जाता। बिना किसी सपने के न तो हमारा मस्तिष्क ही सक्रिय होता है और न अपेक्षित परिस्थितियों का निर्माण ही संभव होता है। इसी से जीवन में सपनों का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। अपने अंदर सपने देखने की कला उत्पन्न कीजिए। अच्छे सपने देखिए व पूरे विश्वास के साथ देखिए और जीवन में सफलता के सर्वोच्च शिखर पर क़दम रख दीजिए।

सुष्मिता बारीक
की
कविताएं

वक्त लगता है

बेटियां तुम अपनी एक अलग पहचान बनाओ
भीड़ में चलो कहने के लिए, दुनिया वाले हैं न,
बेटियां आगे बढ़ो, और अपने साहस को
अपना हथियार बनाएं रखो, क्योंकि पीछे खींचने
के लिए दुनियां वाले है न,
जो भी कर आज तय कर, बस कर कहने के लिए
दुनिया वाले हैं न,
बेटियों तुम कुछ बड़ा करके दिखा
ये दुनियां को एहसास दिला की,
बेटियों को रोकना, टोकना बंद करे,
अरे दुनिया वालो ये बेटियां बंदी या द्रोही नही,
बल्कि वो अनमोल है, अनमोल,
बेटियों से ही दुनिया सवरती हैं,
और आज यह दुनिया उन्ही की दुश्मन बन बैठी हैं।

बेटियां

रात बाद सूरज निकलने में भी वक्त लगता हैं,
छोटा से बड़ा बनने में भी वक्त लगता हैं,
झूठ से सच का सफर तय करने के लिए भी वक्त लगता हैं,
खोए हुए अपनो को भूलने में भी वक्त लगता हैं,
बिखरे हुए रिश्ते को सुलझाने के लिए भी वक्त लगता है,
लेकिन अपनी गलती भूलने में वक्त नहीं लगता, और
ये ज़िंदगी हो या गाड़ी जो समय में "गेयर" बदला नही,
तो दोनों की मरम्मत के लिए भी वक्त लगता हैं।

चौखट पार करती स्त्री

सुसा राणा

जब लड़की ब्याह कर जाती है, एक घर जो उसका अपना था उसे पता चला कि वह घर तो उसका है ही नहीं। उसका घर तो कहीं और है, कहां है? कैसा है? किसी को नहीं पता। बस बातें करते रहते हैं कि इस बार चम्पा अपनी घर चली जायेगी।

चौखट के इस पार रहते माता- पिता के नींद उड़े रहते हैं एक आँख खुली रख सोते हैं ओर पहरा देते हैं। दादी नानी बड़ी होती लड़कियों को सीखा जाती है इनको क्या करना है क्या नहीं करना है। पूरी कपड़े पहना, कम बोला, ठहाके मारके नहीं हंसना, चौका - बर्तन करना, घर में रहना, लड़कों के साथ नहीं खेलना, आदि आदि।बाबुल के बाग में बेटियों को स्वच्छंद बढ़ने कहां दी जाती , उस पर एक माली बैठा दिया जाता है जो हर पल निगरानी रखता है,बाग में किस पौधे को कितना बढ़ना है,कैसे दिखना है,ये सब तैय करता है माली।

"माता-पिता में यह शीत युद्ध छिड़ा रहता लड़की जात है उम्र भी खिसकता जाए इस बार एक अच्छा सा घर देखकर चम्पा की ब्याह हो जाए,तो इस करतब (कर्तव्य) से मुक्ति मिले"

"इतने परिश्रम के बाद पिता ने मेरे लिए वर ढूंढ ही लिया"

ब्याह तैय हुआ, मुहूर्त निकाली गई, कार्ड बांटे गए।

"मेहमानों का आना - जाना शुरू हो गया,माता - पिता में एक चुप्पी थी या कहें उदासी"

इनको बड़ी पड़ी थी मेरी शादी कराने की ,अब -जब मेरी शादी हो ही रही तब पर भी उदासी।"

"अभी मेरी उम्र ही क्या थी जो हाथ पीले कर दिये जा रहे" कहती चम्पा रो पड़ती है।

"चम्पा कब तक रोती रहेगी तुम एकली नहीं हो इस दुनिया में जो ब्याह कर जा रही ..." बुआ ने कहा

"कितना तैय हुआ है।" प्रश्न भरे आंखों से चम्पा ने कहा।

क्या ?

"मेरे माता - पिता की आजादी का , उनके पैरों पर बंधे बेड़ी से मुक्ति का।"

चम्पा की बातें सुन बुआ विस्मृत हो निः शब्द मौन चम्पा को देखती रही जैसे उन्हें अपना विवाह याद आ गया हो, कितना बीघा ज़मीन बिका था इस चौखट को पर कर उस चौखट के अंदर जाने में।

बुआ...बुआ....?

बुआ उस विषाद पल को याद करती अचानक सपने से जागी घबराई मुद्रा में। फिर स्वतः आंखों व पलकों में भरी नीर रेगिस्तान के किसी कुएं का सा सूख गया।

एक प्रश्न जो उत्तर की चाह में किया गया वह भटकता रहा पर उसे अंत तक नहीं मिला कोई उत्तर।

प्रश्न प्रश्न ही रहा गया।

"मैंने सुना था माता -पिता को जमीन की बातें करते।"

रचनाकारो के संपर्क नंबर

प्रो. आलोक कुमार चक्रवाल
कुलपति,
गुरु घासीदास वि.वि. बिलासपुर (छ.ग.)

डॉ. गौरी त्रिपाठी
मो. 9425226059

डॉ. अनीश कुमार
मो. 8957195402

सुखा राणा
मो. 9630281899

सुष्मिता बारीक
मो. 9827919292

नाट्य मंथन • संगम नाट्य समिति ने 15 दिन दिया बच्चों को प्रशिक्षण, सरकंडा स्कूल में दी गई प्रस्तुति

8 कलाकारों ने नाटक में दिया संदेश-सबके विकास के लिए खेलकूद के साथ शिक्षा जरूरी

बड़े भाई ने ली छोटे भाई से सीख

प्रस्तावित भारतेन्दु भवन

विभागीय गतिविधियाँ

महाप्राण 'निराला' बसंत के थे अग्रदूतः कुलपति प्रो. चक्रवाल

गुरु घासीदास केंद्रीय विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में वसंत पंचमी और निराला जयंती पर हुआ कार्यक्रम

गुरु घासीदास केंद्रीय विश्वविद्यालय की कला विद्यापीठ के अंतर्गत हिंदी विभाग में बसंत पंचमी पर मां सरस्वती की पूजा के साथ ही हिंदी साहित्य के छायावादी युग के मूर्धन्य कवि महाप्राण सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की जयंती मनाई गई। इस अवसर पर बसंत पंचमी और निराला के साहित्यिक योगदान को एक साथ रेखांकित किया गया।

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि कुलपति प्रो. आलोक कुमार चक्रवाल ने प्रयागराज स्थित निरालाजी के परिवार से जुड़े अपने संस्मरणों को साझा करते हुए कहा कि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' बसंत के वास्तविक अग्रदूत हैं। उनके साहित्य में समाज और प्रकृति समान रूप से दिखाई देती है। कुलपति प्रो. चक्रवाल ने कहा कि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला हिन्दी कविता के छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा के साथ शामिल हैं। उनकी कविताओं में यथार्थ को प्रमुखता के साथ चित्रित किए जाने के साथ ही प्रेम, श्रृंगार, क्रांति, राष्ट्र गौरव तथा मानवीयता जैसे तत्वों को भी उदात्त भावभूमि प्रदान की गई है।

निराला की पुस्तकें की भेंट : कार्यक्रम में उपस्थित अतिथियों को सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की पुस्तकें भेंट कर उनका सम्मान किया गया। कार्यक्रम के अंत में धन्यवाद ज्ञापन कला विद्यापीठ के अधिष्ठाता प्रो. ब्रजेश तिवारी ने तथा संचालन डा. रमेश कुमार गोहे सहायक प्राध्यापक हिंदी विभाग ने किया। इस अवसर पर विभिन्न विद्यापीठों के अधिष्ठाता, विभागाध्यक्ष व छात्र-छात्राएं उपस्थित रहे।

सीयू के हिंदी विभाग में हुए कार्यक्रम में अतिथियों को निरालाजी की लिखी पुस्तकें भेंट की गईं • नईदुनिया

कविताओं के संदर्भ में बताया व्यक्तित्व

इससे पूर्व अतिथियों द्वारा दीप प्रज्वलित कर मां सरस्वती तथा सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के तैल चित्र पर पुष्प अर्पित किये। मंचस्थ अतिथियों का पुष्पगुच्छ भेंट कर सम्मान किया गया। हिंदी विभाग की विभागाध्यक्ष डा. गौरी त्रिपाठी ने स्वागत उद्बोधन में निराला की विभिन्न कविताओं के संदर्भ से उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए 'निराला' जयंती कार्यक्रम का विषय प्रवर्तन किया। कुलसचिव प्रो. मनीष श्रीवास्तव ने भी बसंत पंचमी व निराला जयंती के अवसर पर अपने विचार व्यक्त किए।

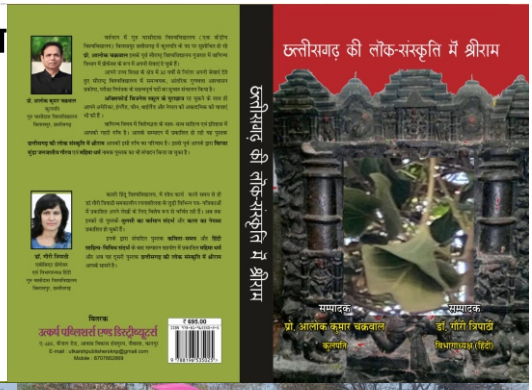

हिन्दी विभाग

गुरु घासीदास विश्वविद्यालय

(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)

कोनी, बिलासपुर (छ.ग.) भारत, पिन-495001